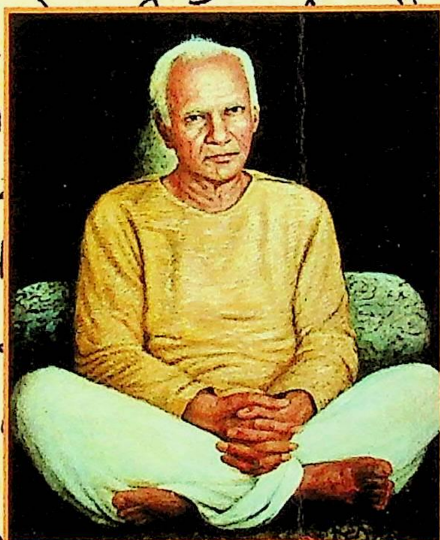
गुरुगीता



निवेदक

-डॉ. प्रणव पण्ड्या

गुरु गीता



निवेदक

डॉ० प्रणव पण्ड्या

ब्रह्मवर्चस



प्रकाशक

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

उत्तराञ्चल

प्रथम आवृत्ति

गुरु पूर्णिमा सन् २००५

मूल्य

३०.०० रुपये



निवेदक

डॉ० प्रणव पण्ड्या

ब्रह्मवर्चस



प्रकाशक-

श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट,

शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार (उत्तराञ्चल)



प्रथम संस्करण-

गुरु पूर्णिमा २००५



मूल्य- ३०.०० रुपया

पत्र व्यवहार का पता

गायत्री तीर्थ-शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

उत्तराञ्चल-२४९४११

फोन (०१३३४) २६०६०२, फैक्स २६०८६६

विषय सूची

क्र० विषय **पृष्ठ क्रमांक**

क्र०	विषय	पृष्ठ क्रमांक
१.	आदि जिज्ञासा, शिष्य का प्रथम प्रश्न	7
२.	सद्‌गुरु से मिलना जैसे रोशनी फैलाते दिये से एकाकार होना	12
३.	सद्‌गुरु की प्राप्ति ही आत्मसाक्षात्कार	16
४.	परमसिद्धि का राजमार्ग	20
५.	गुरु-चरण व रज का माहात्म्य	24
६.	साक्षात् भगवान विश्वनाथ होते हैं सद्‌गुरु	28
७.	स्वयं से कहो-शिष्योऽहम्	32
८.	समर्पण-विसर्जन-विलय	36
९.	सब कुछ गुरु को अर्पित हो	40
१०.	आओ, गुरु को करें हम नमन	44
११.	शंकर रूप सद्‌गुरु को बारंबार नमन	48
१२.	शिवभाव से करें नित्य सद्‌गुरु का ध्यान	52
१३.	गुरु से बड़ा तीनों लोकों में और कोई नहीं	56
१४.	गुरु कृपा ने बनाया महासिद्ध	60
१५.	गुरुकृपा से असंभव भी संभव है	64
१६.	गुरुचरणों की रज कराए भवसागर को पार	69
१७.	साधन-सिद्धि गुरुवर पद नेहू	73
१८.	सद्‌गुरु की कृपादृष्टि की महिमा	77
१९.	मंत्रराज है सद्‌गुरु का नाम	81
२०.	भावनाओं का हो सद्‌गुरु की पराचेतना में विसर्जन	85

२१. सद्गुरु की कठोरता में भी प्रेम छिपा है 89
२२. मद्गुरुः श्री जगद्गुरुः 92
२३. मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम् 96
२४. चेतना के रहस्यों का जानकार होता है सद्गुरु 100
२५. श्री सद्गुरु शरणं मम 104
२६. गुरु ही इष्ट है, इष्ट ही गुरु है 108
२७. एक ही यज्ञ-अहं को भष्म कर देना 112
२८. सहस्त्रदल कमल पर सद्गुरु की दिव्यमूर्ति का ध्यान 116
२९. गुरु का वाक्य ब्रह्मवाक्य समान 120
३०. सबसे सच्ची सिद्धि : गुरुभक्ति 124
३१. 'गुरुसेवा' ही सच्ची साधना 128
३२. गुरुभक्ति ही साधना, वही है सिद्धि 132
३३. सत् चित् आनन्दमयी सद्गुरु की सत्ता 136
३४. सद्गुरु को तत्व से जान लेने का मर्म 141



आत्मनिवेदन

गुरुगीता साधक संजीवनी है। आदिमाता पार्वती की जिज्ञासा सुनने पर भगवान् शिव प्रसन्न होकर उन्हें उपदेश देते हैं। इस पूरे वार्त्तालाप में जो स्कन्द पुराण के उत्तरखण्ड में लगभग पौने दो सौ श्लोकों में आया है, सद्‌गुरु की महिमा का वर्णन है। गुरु-शिष्य संबंध इस धरती का सर्वाधिक पावन निकटतम संबंध है। यदि गुरु परमात्मा की सीधी नियुक्ति के रूप में अवतरित होते हैं तो शिष्य गुरु के समर्पण भाव के बदले आध्यात्मिक अनुदान उदारतापूर्वक देते हैं। गुरुगीता एक प्रकार से हर शिष्य के लिए साधना का एक श्रेष्ठ माध्यम है। इससे गुरुकृपा सतत अनवरत पायी जा सकती है। परम पूज्य गुरुदेव के रूप में महाकाल की-प्रज्ञावतार की सत्ता इस युग में अवतरित हुई (१९११, आश्विन कृष्ण त्रयोदशीा)। उनने अपना जीवन एक समर्पित शिष्य के रूप में जिया। उनके गुरु थे हिमालयवासी स्वामी सर्वेश्वरानन्द जी जिनकी आयु का अनुमान भी लगा पाना कठिन है। आदिकाल से ऋषिगण सूक्ष्म शरीर से हिमालय में तप कर रहे हैं। उन्हीं में से सप्तर्षियों के मार्गदर्शन वाली उच्चस्तरीय एक संसद के प्रतिनिधि हैं हमारे दादागुरु जिनने युग परिवर्तन के निमित्त हेतु पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी को चुना।

युगदृष्टा प्रज्ञापुरुष आचार्यश्री ने एक श्रेष्ठ शिष्य का जीवन जिया एवं १९९० की गायत्री जयन्ती (२ जून) को स्वयं को स्वयं को सूक्ष्म एवं कारण में विलीन कर दिया। उन्हीं गुरुसत्ता के चरणों में "गुरुगीता" की युगानुकूल टीका विभिन्न संदर्भों के साथ प्रस्तुत है। विभिन्न श्लोकों की देवाधिदेव की महादेव की जगज्जननी माँ पार्वती के समक्ष प्रस्तुत की गई व्याख्या के साथ गुरु-शिष्य परम्परा के अनेकानेक उदाहरण परम पूज्य गुरुदेव के जीवन के प्रसंगों व चिन्तन के साथ प्रस्तुत हैं। इसमें सभी कुछ वह है जो पुराण में श्री वेदव्यास ने लिखा है-या बाद में जिसे सूतजी द्वारा ऋषिगणों के समक्ष नैमिष तीर्थ में प्रस्तुत किया गया है। यदिं निवेदक ने अपना कुछ जोड़ा है तो वह ज्ञान गुरु का दिया हुआ ही है जो वास्तव में उन श्लोकों के साथ आज के युग में आज की परिस्थिति में हर साधक के लिए मनन करने योग्य है।

आदिशक्ति द्वारा शिष्य भाव से जिज्ञासा व्यक्त की गयी। जगन्नियन्ता तंत्राधिपति देवों के देव भगवान् महाकाल गुरुरूप में उसका समाधान करते

हैं। इसी तरह शक्ति स्वरूपा परम पूज्य गुरुदेव एवं माता भगवती देवी का जीवन रहा है जिनका सान्निध्य हम सभी को दिया है। गुरु-शिष्य परम्परा का एक श्रेष्ठतम उदाहरण इस ऋषि युग्म ने प्रस्तुत किया। लाखों-करोड़ों शिष्यों पर निरन्तर अनुकम्पा बरसाने वाले प्रखर प्रज्ञारूपी हमारे सद्गुरु एवं सजल श्रद्धारूपी हमारी मातृशक्ति के त्याग तपस्यामय जीवन को समर्पित है, यह संकलन। यह स्वान्तः सुखाय लिखा गया एक संदर्भ ग्रन्थ है जिसका मनन चिन्तन निश्चित ही सद्गुरु की महिमा का सबको बोध कराएगा एवं शिष्य रूप में कर्त्तव्य की जानकारी भी देगा। यह सद्ज्ञान हमारे जीवन में श्रद्धा-सद्विचार एवं सुसंस्कार की त्रिवेणी बनकर प्रवाहित हो तो ही इसका महत्व है। श्रद्धा जिसकी आदर्शों में होती है, वही गुरुकृपा का पात्र होता है। हमारी श्रद्धा गुरुकार्यों के प्रति नित्य हर पल बढ़े, हम उनके निमित्त जीना-कर्त्तव्यों का पालन करना सीखें। हम गुरु के ही चरित्र पर सतत चिन्तन करें। उनके ही जैसा बनने का प्रयास करें तो सद्विचारों की गंगोत्री हमारे अंदर प्रवाहित होने लगेगी। परम पूज्य गुरुदेव द्वारा निस्सृत ज्ञान गंगा-विचार क्रांति का मूल केन्द्र बनी एवं देखते देखते अच्छे विचारों को अपनाने वालों का एक परिकर खड़ा हो गया। यही सद्विचार गुरुकृपा से ही संस्कार में परिणित होते चले जायें तो हमारा गुरु के प्रति समर्पण सार्थक है। हमारी श्रद्धा अंधश्रद्धा भी न हो विवेक पर आधारित हो, आदर्शों के प्रति हो तभी हमें ज्ञान मिलेगा, वह ज्ञान जो हमें भवबंधनों से तार देगा-हमारे अंदर श्रेष्ठ संस्कारों की स्थापना कर हमें देवमानव बना देगा।

"गुरुगीता" का यह पूरा प्रसंग सदाशिव भगवान् महादेव, आदिशक्ति पार्वती, परम पूज्य गुरुदेव एवं स्नेहसलिला माताजी को "त्वदीयवस्तु गोविन्दं तुभ्यमेव समर्पित" के भाव से अर्पित किया जा रहा है। इसका स्वाध्याय निश्चित ही जन-जन का कल्याण करेगा, श्रद्धा संवर्धन करेगा उनकी नवयुग के अवतरण में भागीदारी सुनिश्चित करेगा, गुरुपूर्णिमा पर्व पर यही मंगल कामना।

गुरुपूर्णिमा २००५ **—डॉ० प्रणव पण्ड्या**

आदि जिज्ञासा, शिष्य का प्रथम प्रश्न

गुरुपूर्णिमा के पुण्य पर्व पर प्रत्येक शिष्य सद्‍गुरु कृपा के लिए प्रार्थनाशील रहता है। वह उस साधना विधि को पाना-अपनाना चाहता है, जिससे उसे अपने सद्‍गुरु की चेतना का संस्पर्श मिले। गुरुतत्त्व का बोध हो। जीवन के सभी लौकिक दायित्वों का पालन-निर्वहन करते हुए उसे गुरुदेव की कृपानुभूतियों का लाभ मिल पाए। शिष्यों-गुरुभक्तों की इन सभी चाहतों को पूरा करने के लिए प्राचीन ऋषियों ने गुरुगीता के पाठ, अर्थ चिन्तन, मनन व निदिध्यासन को समर्थ साधना विधि के रूप में बताया था। इस गुरुगीता का उपदेश कैलाश शिखर पर भगवान सदाशिव ने माता पार्वती को दिया था। बाद में यह गुरुगीता नैमिषारण्य के तीर्थ स्थल में सूत जी ने ऋषिगणों को सुनायी। भगवान व्यास ने स्कन्द पुराण के उत्तरखण्ड में इस प्रसंग का बड़ी भावपूर्ण रीति से वर्णन किया है।

शिष्य-साधक हजारों वर्षों से इससे लाभान्वित होते रहे हैं। गुरुतत्त्व का बोध कराने के साथ यह एक गोपनीय साधना विधि भी है। अनुभवी साधकों का कहना है कि गुरुवार का व्रत रखते हुए विनियोग और ध्यान के साथ सम्यक् विधि से इसका पाठ किया जाय, तो शिष्य को अवश्य ही अपने गुरुदेव का दिव्य सन्देश मिलता है। स्वप्न में, ध्यान में या फिर साक्षात् उसे सद्‍गुरु कृपा की अनुभूति होती है। शिष्य के अनुराग व प्रगाढ़ भक्ति से प्रसन्न होकर गुरुदेव उसकी आध्यात्मिक व लौकिक इच्छाओं को पूरा करते हैं। यह कथन केवल काल्पनिक विचार नहीं, बल्कि अनेकों साधकों की साधनानुभूति है। हम सब भी इसके पाठ, अर्थ चिन्तन, मनन व

निदिध्यासन से गुरुतत्त्व का बोध पा सकें, परम पूज्य गुरुदेव की कृपा से लाभान्वित हो सके, इसलिए इस ज्ञान की, मंत्र क्षमता वाले गुरुगीता के श्लोकों की भावपूर्ण व्याख्या की जाएगी।

लेकिन सबसे पहले साधकों को इसकी पाठविधि बतायी जा रही है। ताकि जो साधक इसके नियमित पाठ से लाभान्वित होना चाहें, हो सकें। गुरुगीता के पाठ को शास्त्रकारों ने मंत्रजप के समतुल्य माना है। उनका मत है कि इसके पाठ को महीने के किसी भी गुरुवार को प्रारम्भ किया जा सकता है। अच्छा हो कि साधक उस दिन एक समय अस्वाद भोजन करें। यह उपवास मनोभावों को शुद्ध व भक्तिपूर्ण बनाने में समर्थ सहायक की भूमिका निभाता है। इसके बाद पवित्रीकरण आदि षट्कर्म करने के पश्चात् पूजा वेदी पर रखे गए गुरुदेव के चित्र का पंचोपचार पूजन करें। तत्पश्चात् दाँए हाथ में जल लेकर विनियोग का मंत्र पढ़ें-

ॐ अस्य श्री गुरुगीता स्तोत्रमंत्रस्य भगवान सदाशिव ऋषिः। नानाविधानि छंदासि। श्री सद्गुरुदेव परमात्मा देवता। हं बीजं। सः शक्तिः। क्रों कीलकं। श्री सद्गुरुदेव कृपाप्राप्यर्थे जपे विनियोगः॥

विनियोग मंत्र पढ़ने के बाद हाथ के जल को पास रखे किसी पात्र में डाल दें। दरअसल यह विनियोग साधक को मंत्र की पवित्रता, महत्ता का स्मरण कराता है। मंत्र के ऋषि, देवता, बीज, शक्ति व कीलक की याद कराता है। साथ ही साधक के मन को एकाग्र करते हुए पाठ किए जाने वाले स्तोत्र मंत्र की शक्तियों को जाग्रत् करता है। ऊपर बताए गए विनियोग मंत्र का अर्थ है- ॐ (परब्रह्म का स्मरण) इस गुरुगीता स्तोत्र मंत्र के भगवान् सदाशिव द्रष्टा ऋषि हैं। इसमें कई तरह के छन्द हैं। इस मंत्र के देवता या ईष्ट परमात्म स्वरूप सद्गुरुदेव हैं। इस महामंत्र का बीज 'हं' है, शक्ति 'सः' है, जो जगज्जननी माता भगवती की प्रतीक है। 'क्रों' बीज से इसे कीलित किया गया है। इस

मंत्र का पाठ या जप सद्‌गुरुदेव की कृपा पाने के लिए किया जा रहा है।

इस विनियोग के बाद गुरुदेव का ध्यान किया जाना चाहिए।

ध्यान मंत्र निम्न है-

योग पूर्णं वेदमूर्तिं तपोनिष्ठं तेजस्विनम्।
गौरवर्णं प्रेममूर्तिं माता भगवती सह शोभितम्॥
कारूण्यामृत सागरं शिष्यभक्तादि सेवितम्।
ध्यायेद् सद्‌गुरुं तं श्रीरामम् आचार्यवरम्॥

इस ध्यान मंत्र का भाव है, गौरवर्णीय, प्रेम की साकार मूर्ति गुरुदेव वन्दनीया माताजी (माता भगवती देवी) के साथ सुशोभित हैं। गुरुदेव योग की सभी साधनाओं में पूर्ण, वेद की साकार मूर्ति, तपोनिष्ठ व तेजस्वी हैं। शिष्य और भक्तों से सेवित गुरुदेव करूणा के अमृत सागर हैं। उन आचार्य श्रेष्ठ श्रीराम का, अपने गुरुदेव का साधक ध्यान करें।

ध्यान की प्रगाढ़ता में परम पूज्य गुरुदेव को अपना आत्मनिवेदन करने के बाद साधक को गुरुगीता का पाठ करना चाहिए। जिससे साधकगण उनके गहन चिन्तन से गुरुतत्त्व का बोध प्राप्त कर सकें। इसके पठन, अर्थ चिन्तन को अपनी नित्य प्रति की जाने वाली साधना का अविभाज्य अंग मानें।

गुरुगीता का प्रारम्भ ऋषियों की जिज्ञासा से होता है-

ऋषयः ऊचुः

गुह्यात् गुह्यतरा विद्या गुरुगीता विशेषतः।
ब्रूहि नः सूत कृपया शृणुमस्त्वत्प्रसादतः॥

नैमिषारण्य के तीर्थ स्थल में एक विशेष सत्र के समय ऋषिगण महर्षि सूत से कहते हैं- हे सूत जी! गुरुगीता को गुह्य से भी गुह्यतर विशेष विद्या कहा गया है। आप हम सभी को उसका उपदेश दें। आपकी कृपा से हम सब भी उसे सुनने का लाभ प्राप्त करना चाहते हैं।

महर्षि सूत ने कहा- सूत उवाच

कैलाश शिखरे रम्ये भक्ति सन्धान नायकम्।

प्रणम्य पार्वती भक्त्या शंकरं पर्यपृच्छत ॥१॥

ऋषिगणों, यह बड़ी प्यारी कथा है। इस गुरुगीता के महाज्ञान का उद्गम तब हुआ, जब कैलाश पर्वत के अत्यन्त रमणीय वातावरण में भक्तितत्त्व के अनुसन्धान में अग्रणी माता पार्वती ने भक्तिपूर्वक भगवान सदाशिव से प्रश्न पूछा।

श्री देव्युवाच-

ॐ नमो देवदेवेश परात्पर जगद्गुरो।

सदाशिव महादेव गुरुदीक्षा प्रदेहि मे ॥२॥

केन मार्गेण भोः स्वामिन् देही ब्रह्ममयोभवेत्।

त्वं कृपां करू मे स्वामिन नमामि चरणौ तव ॥३॥

देवी बोलीं- हे देवाधिदेव! हे परात्पर जगद्गुरु! हे सदाशिव! हे महादेव! आप मुझे गुरुदीक्षा दें। हे स्वामी! आप मुझे बताएँ कि किस मार्ग से जीव ब्रह्म स्वरूप को प्राप्त करता है। हे स्वामी! आप मुझ पर कृपा करें। मैं आपके चरणों में प्रणाम करती हूँ।

यही है आदि जिज्ञासा। यही है प्रथम प्रश्न। यही वह बीज है, जिससे गुरुतत्त्व के बोध का बोधितरु अंकुरित हुआ। भगवान शिव की कृपा से पुष्पित-पल्लवित होकर महावृक्ष बना। इस मधुर प्रसंग में आदिशक्ति, जगत्माता ने स्वयं शिष्य भाव से यह प्रश्न पूछा है। चित् शक्ति स्वयं आदि शिष्य बनी हैं। जगत् के स्वामी भगवान् महाकाल आदि गुरु हैं। इस प्रसंग का सुखद साम्य परम वन्दनीया माताजी एवं परम पूज्य गुरुदेव की कथा गाथा से भी है। इस परम विशाल, महाव्यापक गायत्री परिवार की जननी वन्दनीया माताजी आदि शिष्य भी थीं। उन्होंने हम सबके समक्ष शिष्यत्व का अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया। वे हम सबके लिए माता पार्वती की भांति हैं। जिनकी जिज्ञासा और तप से ज्ञान की युग सृष्टि हुई।

माता पार्वती ने अपनी भक्तिपूर्ण जिज्ञासा से भूत-वर्तमान और भविष्य के सभी शिष्यों व साधकों के समक्ष 'विनयम् ददाति पात्रताम्' का आदर्श सामने रखा। जो अपने सम्पूर्ण अन्तःकरण को गुरुचरणों में समर्पित करके गुरुदीक्षा प्राप्ति की प्रार्थना करता है। वही तत्त्वज्ञान का अधिकारी होता है। किसी भी तरह से अहंता का लेशमात्र भी रहने से ज्ञान व तप की साधना फलित नहीं होती है। जो जगत्माता आदि जननी की भांति स्वयं को अपने गुरु के चरणों में अर्पित कर देते हैं। गुरु कृपा उन्हीं का वरण करती है। करूणा सागर कृपालु गुरुदेव उन्हीं को अपनी कृपा का वरदान देते हैं।



सद्गुरु से मिलना जैसे रोशनी फैलाते दिये से एकाकार होना

गुरुगीता साधक संजीवनी है। इसकी पहली कड़ी में गुरुतत्त्व की जिज्ञासा का प्रसंग आया है। साधकों की आदिमाता महादेवी पार्वती ने परमगुरु भगवान् शिव से यह जिज्ञासा की। आदिमाता की इस जिज्ञासा पर भगवान् शिव अति प्रसन्न हुए। उच्चतम तत्त्व के प्रति जिज्ञासा भी उच्चतम चेतना में अंकुरित होती है। उत्कृष्टता एवं पवित्रता की उर्वरता में ही यह अंकुरण सम्भव हो पाता है। जिज्ञासा- जिज्ञासु की भावदशा का प्रतीक है। इसमें उसकी अन्तर्चेतना प्रतिबिम्बित होती है। जिज्ञासा के स्वरूप में जिज्ञासु की तप-साधना, उसके स्वाध्याय, चिन्तन-मनन व निदिध्यासन की झलक मिलती है। माता पार्वती की जिज्ञासा भी हम सब गुरुभक्तों की कल्याण कामना के उद्देश्य से उपजी थी। सर्वज्ञानमय मां ने अपनी सन्तानों की आध्यात्मिक उन्नति के लिए देवेश्वर शिव से प्रश्न किया था।

उत्तर में भगवान् शिव बोले-ईश्वर उवाच

मम रूपासि देवित्वं त्वत्प्रीत्यर्थं वदाम्यहम्।
लोकापकारकः प्रश्नो न केनाऽपि कृतः पुरा।।४।।
दुर्लभं त्रिषु लोकेषु तदश्रृणुस्व वदाम्यहम्।
गुरुं विना ब्रह्म नान्यत् सत्यं सत्यं वरानने।।५।।

हे देवी! आप तो मेरा अपना स्वरूप हैं। आपका यह प्रश्न बड़ा ही लोकहितकारी है। ऐसा प्रश्न पहले कभी किसी ने नहीं पूछा। आपकी प्रीति के कारण इसके उत्तर को मैं अवश्य कहूँगा। हे महादेवी! यह उत्तर भी तीनों लोकों में अत्यन्त दुर्लभ है। परन्तु इसे मैं कहूँगा। आप सुने, सद्गुरु के सिवाय कोई ब्रह्म (कोई अन्य उच्चतम तत्त्व) नहीं है। हे सुमुखि, यह सत्य है, सत्य है।

भगवान् शिव के इस कथन के प्रथम चरण में गुरु और शिष्य की अनन्यता, एकात्मता और तादात्म्यता है। गुरु और शिष्य अलग-अलग नहीं होते। बस उनके शरीर अलग-अलग दिखते भर हैं। उनकी अन्तर्चेतना आपस में घुली मिली होती है। सच्चा शिष्य गुरु का अपना स्वरूप होता है। उसमें सद्गुरु की चेतना प्रकाशित होती है। शिष्य के प्राणों में गुरु का तप प्रवाहित होता है। शिष्य के हृदय में गुरु की भावनाओं का उद्रेक होता है। शिष्य के विचारों में गुरु का ज्ञान प्रस्फुटित होता है। ऐसे गुरुगत प्राण शिष्य के लिए कुछ भी अदेय नहीं होता। सद्गुरु उसे दुर्लभतम तत्त्व एवं सत्य बनाने के लिए सदा सर्वदा तैयार रहते हैं। शिष्य के भी समस्त क्रियाकलाप अपने सद्गुरु की अन्तर्चेतना की अभिव्यक्ति के लिए होते हैं।

महादेव शिव के कथन का अन्तिम सत्य यह है कि 'गुरु ही ब्रह्म है।' यह संक्षिप्त कथन बड़ा ही सारभूत है। इसे किसी बौद्धिक क्षमता से नहीं भावनाओं की गहराई से समझा जा सकता है। इसकी सार्थक अवधारणा के लिए शिष्य की छलकती भावनाएँ एवं समर्पित प्राण चाहिए। जिसमें यह पात्रता है, वह आसानी से भगवान् भोलेनाथ के कथन का अर्थ समझ सकेगा। 'गुरु ही ब्रह्म है' में अनेकों गूढ़ार्थ समाए हैं। जो गुरुतत्त्व को समझ सका, वही ब्रह्मतत्त्व का भी साक्षात्कार कर पाएगा। सद्गुरु कृपा से जिसे दिव्य दृष्टि मिल सकी, वही ब्रह्म का दर्शन करने में सक्षम हो सकेगा। इस अपूर्व दर्शन में द्रष्टा, दृष्टि, एवं दर्शन सब एकाकार हो जाएँगे। अर्थात् शिष्य, सद्गुरु एवं ब्रह्मतत्त्व के बीच सभी भेद अपने आप ही मिट जाएँगे। यह सत्य सूर्य प्रभाव की तरह उजागर हो जाएगा कि सद्गुरु ही ब्रह्म है और ब्रह्म ही अपने सद्गुरु के रूप में साकार हुए हैं।

भगवान् शिव कहते हैं, सद्गुरु की कृपा दृष्टि के अभाव में-

वेदशास्त्रपुराणानि इतिहासादिकानि च।
मंत्रयंत्रादि विद्याश्च स्मृतिरुच्चादनादिकम्॥६॥

शैवशाक्तागमादीनि अन्यानि विविधानि च।
अपभ्रंशकराणीह जीवानां भ्रान्तचेतसाम् ॥७॥

वेद, शास्त्र, पुराण, इतिहास, स्मृति, मंत्र, यंत्र, उच्चाटन आदि विद्याएँ, शैव-शाक्त, आगम आदि विविध विद्याएँ केवल जीव के चित्त को भ्रमित करने वाली सिद्ध होती है।

विद्या कोई हो, लौकिक या आध्यात्मिक उसके सार तत्त्व को समझने के लिए गुरु की आवश्यकता होती है। विद्या के विशेषज्ञ गुरु ही उसका बोध कराने में सक्षम और समर्थ होते हैं। गुरु के अभाव में अर्थवान् विद्याएँ भी अर्थहीन हो जाती है। इन विद्याओं के सार और सत्य को न समझ सकने के कारण भटकन ही पल्ले पड़ती है। उच्चस्तरीय तत्त्वों के बारे में पढ़े गए पुस्तकीय कथन केवल मानसिक बोझ बनकर रह जाते हैं। भारभूत हो जाते हैं। जितना ज्यादा पढ़ो, उतनी ही ज्यादा भ्रान्तियाँ घेर लेती हैं। गुरु के अभाव में काले अक्षर जिन्दगी में कालिमा ही फैलाते हैं। हाँ यदि गुरुकृपा साथ हो तो ये काले अक्षर रोशनी के दीए बन जाते हैं।

चीन में एक सन्त हुए हैं। शिन-हुआ। इन्होंने काफी दिनों तक साधना की। देश-विदेश के अनेक स्थानों का भ्रमण किया। विभिन्न शास्त्र और विद्याएँ पढ़ी। परन्तु चित्त को शान्ति न मिली। सालों-साल के विद्याभ्यास के बावजूद अविद्या की भटकन एवं भ्रान्ति यथावत बनी रही। उन दिनों शिन-हुआ को भारी बेचैनी थी। अपनी बेचैनी के इन्हीं दिनों में उनकी मुलाकात बोधि धर्म से हुई। बोधिधर्म उन दिनों भारत से चीन गए हुए थे। बोधिधर्म के सान्निध्य में, उनके सम्पर्क के एक पल में शिन-हुआ की सारी भ्रान्तियाँ, समूची भटकन समाप्त हो गयी। उनके मुख पर एक ज्ञान की अलौकिक दीप्ति छा गयी। बात अनोखी थी। जो सालों-साल अनेकानेक शास्त्रों एवं विद्याओं को पढ़कर न हुआ, वह एक पल में हो गया।

अपने जीवन की इस अनूठी घटना का उल्लेख शिन-हुआ ने अपने संस्मरणों में किया है। उन्होंने अपने गुरु बोधिधर्म के वचनों का उल्लेख करते हुए लिखा है- विद्याएँ और शास्त्र दीए के चित्र भर हैं। इनमें केवल दीए बनाने की विधि भर लिखी है। इन चित्रों को, विधियों को कितना ही पढ़ा जाय, रटा जाय, इन्हें अपनी छाती से लगाए रखा जाय, थोड़ा भी फायदा नहीं होता। दीए के चित्र से रोशनी नहीं होती। अंधेरा जब गहराता है, तो शास्त्र और विद्याओं में उल्लेखित दीए के चित्र थोड़ा भी काम नहीं आते। मन वैसा ही तड़पता रहता है।

लेकिन सद्गुरु से मिलना जैसे जलते हुए, रोशनी को चारों ओर फैलाते हुए दीए से मिलना है। शिन-हुआ ने लिखा है कि उनका अपने गुरु बोधीधर्म से मिलना ऐसे ही हुआ। वह कहते हैं कि प्रकाश स्रोत के सम्मुख हो तो भला भ्रान्तियों एवं भटकनों का अंधेरा कितनी देर तक टिका रह सकेगा? यह कोई गणित का प्रश्नचिह्न है। इसका जवाब जोड़-घटाव, गुणा-भाग में नहीं, सद्गुरु कृपा की अनुभूति में है। जीवन में यह अनुभूति आए तो सभी विद्याएँ, सारे शास्त्र अपने आप ही अपना रहस्य खोलने लगते हैं। शास्त्र और पुस्तकें न भी हों तो भी गुरुकृपा से तत्त्वबोध होने लगता है। गुरुकृपा की महिमा ही ऐसी है। इस महिमा की अभिव्यक्ति अगले मंत्रों में है।



सद्गुरु की प्राप्ति ही आत्मसाक्षात्कार

गुरुगीता बोधिवृक्ष है। इसकी छांव तले होने वाली सद्गुरु कृपा की अनुभूति साधक को सम्यक् सम्बुद्ध बनाती है। उपरोक्त पक्तियों में गुरुतत्त्व के प्रति जिज्ञासु साधकों ने पढ़ा कि गुरु के अभाव में समस्त शास्त्र एवं सारी विद्याएँ अर्थहीन हो जाती हैं। परमगुरु भगवान् शिव के ये वचन बड़े अनूठे हैं। इनको आत्मसात करने के लिए गहन श्रद्धा एवं प्रखर विवेक की जरूरत है। श्रद्धा एवं विवेक के संयोग से ही यह तत्त्व समझ में आता है कि समस्त शास्त्र सारगर्भित है और सारी विद्याएँ अर्थवान हैं, पर तभी जब सद्गुरु कृपा करके इनका सम्यक् बोध कराएँ। सद्गुरु के न होने पर शास्त्र केवल वाक्जाल और वितण्डावाद का साधन बनकर रह जाते हैं। इन्हें पढ़ने और रटने वाले अहंकार से छुटकारा पाने की जगह ज्ञानी होने के झूठे अहं के ज्वर से पीड़ित होते रहते हैं। यही स्थिति विद्याओं की है। गुरु सान्निध्य के अभाव में कल्याणकारी विद्याएँ भी अकल्याणकारी बन जाती हैं। यह ऐसा अनुभव सिद्ध सत्य है, जिसे अनेकों बार अनेकों ने अनुभव किया है।

गुरु महिमा की इस कथा को आगे बढ़ाते हुए भगवान् सदाशिव, आदि माता पार्वती से कहते हैं-

यज्ञो व्रतं तपो दानं जपस्तीर्थं तथैव च।
गुरुतत्त्वमविज्ञाय मूढ़ास्ते चरते जन॥ ८॥

यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप और तीर्थ आदि सारी प्रक्रियाओं को करने वाले लोग भी गुरुतत्त्व के बोध के अभाव में मूढ़ की तरह विचरते रहते हैं।

गुरुओं के भी गुरु परम गुरु भगवान् सदाशिव के इन वचनों का केन्द्रीय तत्त्व यही है कि गुरुतत्त्व की अनुभूति पाए बिना जिन्दगी की मूढ़ता किसी भी दशा में दूर नहीं होती। और मूढ़ता की इस भावदशा में किए गए उच्चकर्म भी अपना सार्थक सत्परिणाम नहीं दे पाते हैं। यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप और तीर्थ ये सभी श्रेष्ठ कर्म हैं। परन्तु सद्गुरु के अभाव में इनकी श्रेष्ठता भी क्षुद्रता एवं संकीर्णता का रूप ले लेती है। इन्हें करने वाले इन उच्च कर्मों की श्रेष्ठता को, अपने स्वार्थ, अहंकार एवं मतवाद की संकीर्णता से ढाँप देते हैं। उदाहरण के लिए जो यज्ञकर्म 'इदं न मम्' का भाव प्रवर्तक है- वह गुरुज्ञान के अभाव में प्रायः कामनाओं की पूर्ति के लिए किया जाता है। इसी तरह व्रत के पालन का तात्पर्य व्रतशील जीवन से है। परन्तु साधारणतया लोग विभिन्न व्रतों को अपनी मनोकामनाओं की तृप्ति का साधन बना लेते हैं। ठीक यही स्थिति तप, दान, जप और तीर्थ की है।

इस स्थिति से उबरने का उपाय सुझाते हुए भगवान् शिव माता पार्वती से कहते हैं-

गुरुर्बुद्ध्यात्मनो नान्यत् सत्यं सत्यं न संशयः।
तल्लाभार्थं प्रयत्नस्तु कर्तव्यो हि मनीषिभिः॥ ९॥

प्रबुद्ध आत्मा एवं सद्गुरु एक ही है, भिन्न नहीं है। यह सत्य है- सत्य है, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। इसलिए मननशील मनीषियों को इसकी प्राप्ति हेतु ही सभी श्रेष्ठ कर्तव्य कर्म करना चाहिए।

भगवान् महादेव के इन वचन में ऊपर कहे हुए वचन की पूर्णता है। साधकों के मन में इस मंत्र के पहले वाले मंत्र को पढ़कर यह शंका जन्म ले सकती है कि जब गुरुज्ञान के अभाव में यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप और तीर्थ आदि कर्म केवल मूढ़ता के द्योतक बने रहते हैं। तो फिर यदि सद्गुरु का सान्निध्य अभी प्राप्त न हो, तो इन्हें किया जाय अथवा नहीं। साधकों की यह शंका मात्र कोरी शंका नहीं है, परन्तु जिज्ञासु अन्तर्मन की जिज्ञासा भी है। महादेव भगवती पार्वती को इस

मंत्र में इसी जिज्ञासा का समाधान सुझाते हैं। परम गुरु कहते हैं, हे देवि! जो मननशील मनीषी हैं, वे शीघ्र ही इस गूढ़ रहस्य को समझ जाते हैं कि अपनी जाग्रत् आत्मा ही सद्गुरु है अथवा गुरुदेव भगवान् ही अपनी जाग्रत् आत्मा है। इस कथन में सबसे अधिक ध्यान आकर्षित करने वाला शब्द 'मनीषी' है। मनीषी सब नहीं होते। ये बड़े ही विशेष प्रकार के साधना परायण व्यक्ति होते हैं। इनका विश्वास जीवन की यांत्रिक गतिविधियों में फँसकर सब कुछ गवाँ देने में नहीं होता। इनकी अन्तर्चेतना रोजी-रोटी कमाने तक सिमटी नहीं रहती। ये अपनी रोजमर्रा की गतिविधियों के साथ जीवन के सार तत्त्व के बारे में सतत मनन करते रहते हैं।

ऐसे मननशील मनीषियों को शीघ्र ही इस यथार्थता का अहसास हो जाता है कि सद्गुरु की कृपाशक्ति से ही आत्मचेतना में जागृति आती है। और जब आत्म चेतना जाग्रत् होती है, तो यह सत्य अनुभूति का रूप ले लेता है कि सद्गुरुदेव की कृपाचेतना ही अपनी आत्मचेतना है। इन दोनों में कोई भिन्नता नहीं है। इसलिए गहन अर्थ में सद्गुरु के सत्य स्वरूप का साक्षात्कार ही आत्म साक्षात्कार है। सद्गुरु की प्राप्ति ही आत्मप्राप्ति है। मनुष्य जीवन का केन्द्रीय उद्देश्य एवं आधार भी यही है। इसलिए जो भी कर्तव्य कर्म किए जाएँ वे सभी इसी उद्देश्य एवं अभीप्सा के साथ हो। यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप एवं तीर्थ इन सभी श्रेष्ठ कर्मों का अनुष्ठान करना चाहिए। परन्तु इन कर्मों के पवित्र अनुष्ठान के साथ सद्गुरु की प्राप्ति का संकल्प अवश्यमेव जुड़ा हुआ हो। इस संकल्प के जुड़ने मात्र से से ये सभी कर्म श्रेष्ठ से श्रेष्ठतर और श्रेष्ठतम होते चले जाएँगे। और इनके अनुष्ठान में तत्पर व्यक्ति की अन्तर्चेतना मूढ़ता से ज्ञानदाता सद्गुरुदेव की ओर यात्रा कर सकेगी।

भगवान् महादेव गुरुगीता के अगले मंत्र में स्पष्ट करते हुए कहते हैं- इस तरह के संकल्प के साथ किए गए पवित्र कर्मों के अनुष्ठान गूढ़ विद्या है।

गूढ़विद्या जगन्माया देहेन्वाज्ञान सम्भवा।
उदयः यत्प्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते॥ १०॥

माया से आवृत्त जगत् और अज्ञान से उत्पन्न शरीर के लिए यह गूढ़विद्या है। जिसके प्रकाशित होने से सत्यज्ञान का उदय होता है। इसी तत्त्व को 'गुरु' संज्ञा दी गयी है।

सद्गुरु प्राप्ति की अभीप्सा के संकल्प को भगवान् सदाशिव गूढ़विद्या इसलिए कहते हैं, क्योंकि यह तत्त्व साधारणतया किसी की समझ में नहीं आता। कामनाओं और वासनाओं के अँधेरे से घिरे लोग 'गुरु' शब्द का महत्त्व ही नहीं समझ पाते। 'गुरु' में पहला अक्षर 'गु' अंधकार का वाचक है। और 'रु' प्रकाश का वाचक है। इस तरह गुरु वह तत्त्व है जो अज्ञान रूपी अन्धकार का नाश करके ज्ञानरूपी तेज का प्रकाश करता है। ऐसे सद्गुरु के लिए लगन,उनको पाने के लिए गहरी चाहत, उनके चरणों में अपने सर्वस्व समर्पण के लिए आतुरता में ही इस मनुष्य जीवन की सार्थकता है।

हालांकि यह कार्य आसान नहीं है। आसान न होने का पहला कारण है कि यह समस्त जगत् अपने वास्तविक रूप में है तो ब्रह्ममय, किन्तु इस पर माया का छद्म आवरण है। इस दुनिया में प्रायः सभी लोग इसी कारण मेरा-तेरा करने में लगे हुए हैं। गुरु प्राप्ति की लगन में अगली बाधा है शरीर। यहाँ शरीर का अर्थ केवल देह मात्र से नहीं है। बल्कि इसके अर्थ में दैहिक कष्ट और दैहिक वासना भी शामिल है। जो मनुष्य की आत्म चेतना को अपने से कसे-जकड़े रहती है। इन बाधाओं और अवरोधों को परे हटाकर जो सद्गुरु की प्राप्ति के लिए संकल्पित होते हैं, वे धन्य हैं, वे कृतार्थ और कृतकृत्य होते हैं, जो सद्गुरु के चरणों में भक्तिपूर्वक अपने को न्यौछावर करने के लिए आगे बढ़ते हैं, क्योंकि गुरुचरणों की महिमा अपार है।



परमसिद्धि का राजमार्ग

गुरुगीता के महामन्त्र साधना जीवन के महासूत्र हैं। इन्हें अपनाकर, इनकी साधना करके साधक का अध्यात्म राज्य में प्रवेश सुनिश्चित है। पर ध्यान रहे गुरुगीता के इन महामन्त्रों की साधना करने का मतलब कतिपय क्रियाओं अथवा कर्मकाण्डों को कर लेना भर नहीं है। इनकी साधना करने का अर्थ है उस भावदशा में अपनी सम्पूर्णता एवं समग्रता से जीना, जिसका कि ये महामन्त्र बोध कराते हैं। पिछले मंत्र में गुरुतत्त्व के बारे में बताया गया है कि परम गुरु भगवान् सदाशिव के उन वचनों को किस तरह आत्मसात् किया जाए, जिसमें उन्होंने कहा था कि गुरुतत्त्व ही साधक के जीवन का सार सर्वस्व है। इसके अभाव में यज्ञ, व्रत, तप, दान, जप और तीर्थ अपना अर्थ खो देते हैं। यही नहीं अपनी प्रबुद्ध आत्मा और सद्‌गुरु भिन्न नहीं है। ये दोनों एक ही हैं, इसमें तनिक भी संशय नहीं है। इस तत्त्व के सत्य को जानने से ही साधक के जीवन में सत्य ज्ञान का उदय होता है।

गुरुतत्त्व की इस कथा को आगे बढ़ाते हुए देवाधिदेव भगवान् महादेव आदिमाता पार्वती से कहते हैं-

सर्वपापविशुद्धात्मा श्रीगुरोः पादसेवनात्।
देहीब्रह्मभवेद् यस्मात् त्वत् कृपार्थं वदामि ते॥ १॥

सद्‌गुरु के चरणों की सेवा से साधक सारे पापों से मुक्त होकर विशुद्धात्मा हो जाता है। (भगवान् शिव, माता पार्वती से कहते हैं, यही नहीं देवि!) मैं तुम्हें कृपापूर्वक बता रहा हूँ, देहधारी जीव ब्रह्मभाव को उपलब्ध हो जाता है।

गुरुचरणों की महिमा के बारे में कहे गए, भगवान् महादेव के ये वचन साधकों के जीवन का सम्पूर्ण सत्य है। समस्त सृष्टि का आध्यात्मिक इतिहास साक्षी है। कि अनेकों बार इस महामन्त्र में निहित सत्य को अपने साधना जीवन में खरा प्रमाणित किया है। महान साधकों ने दुर्लभतम ब्रह्मतत्त्व का बोध इस महामन्त्र की साधना से पाया है। ऐसी सैकड़ों, हजारों और लाखों घटनाओं में हम यहाँ केवल एक घटना की चर्चा कर रहे हैं। इसकी चर्चा विश्वविख्यात महान् योगी स्वामी योगानन्द ने योगी कथामृत में भी की है।

सद्गुरु के चरणों की महिमा बोध कराने वाली यह अनुभूति कथा महान्गुरु योगिराजाधिराज श्री श्यामाचरण लाहिड़ी और उनके विभूतिवान शिष्य स्वामी प्रणवानन्द के बारे हैं। स्वामी प्रणवानन्द ने स्वयं अपने मुख से अपनी इस अनुभूति को योगानन्द को सुनाया था। उन्होंने उनसे कहा- गुरु की कृपा कितनी अमूल्य होती है, वह सुनो। मैं उन दिनों नित्यरात्रि को आठ घण्टे ध्यान किया करता था। उस समय मेरा समूचा दिन अपने रेलवे कार्यालय में बीत जाता था। वहाँ मुझे अपने क्लर्क होने का दायित्व निभाना पड़ता था। उन दिनों मेरे लिए यह ड्यूटी बड़ी थकाऊ और उबाऊ थी। फिर भी मैं बड़े ही मनोयोग पूर्वक हर रात को ध्यान करता था। प्रत्येक रात्रि को आठ घण्टे की अविराम साधना मेरी जीवनचर्या का अनिवार्य और अविभाज्य अंग बन गयी।

इसके अद्भुत परिणाम भी मेरे जीवन में आए। विराट् आध्यात्मिक अनुभूति से मेरी समूची अन्तर्चेतना उद्भासित हो उठी। परन्तु अभी भी उस अखण्ड सच्चिदानन्द और मेरे बीच एक झीना परदा हमेशा बना रहता था। यहाँ तक कि अतिमानवी निष्ठा के साथ साधना करने के बावजूद भी मैं ब्रह्मतत्त्व से एकाकार नहीं हो सका। इस बारे में किए गए मेरे सारे प्रयास पुरुषार्थ, निष्फल गए। तभी मुझे ध्यान आया कि साधक के लिए सद्गुरु चरणों की कृपा ही परमपूर्णता का परिचय

पर्याय बनती है। यही सोचकर एक दिन सायंकाल मैंने लाहिड़ी महाशय के चरणों का आश्रय ग्रहण किया। उनके आशीष की आकांक्षा के साथ मेरी प्रार्थना चलती रही, 'गुरुदेव, मेरी ईश्वर में समा जाने की आकांक्षा इतनी तीव्र वेदना का रूप धारण कर चुकी है कि उस परम प्रभु का प्रत्यक्ष दर्शन किए बिना मैं अधिक दिनों तक जीवित नहीं रह सकता।'

लाहिड़ी महाशय हल्के से मुस्कराए और बोले, भला इसमें मैं क्या कर सकता हूँ। तुम और गहराई से ध्यान करो। मैने उनके चरण पकड़कर बड़े ही करुण भाव से पुकार की, हे मेरे प्रभु, मेरे स्वामी, मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ। आप इस भौतिक कलेवर में मेरे सम्मुख विद्यमान हैं। अब मेरी प्रार्थना को स्वीकारें, और मुझे आशीर्वाद दें कि मैं आपका आपके अनन्त रूप में दर्शन कर सकूँ। प्रसन्न भाव से शिष्य वत्सल परम सद्गुरु लाहिड़ी महाशय ने अपना हाथ आशीर्वाद मुद्रा में उठाते हुए कहा, जाओ वत्स, अब तुम जाओ और ध्यान करो। मैंने तुम्हारी प्रार्थना परम पिता परमेश्वर परब्रह्म तक पहुँचा दी है।

अपरिमित आनन्द और उल्लास से भरकर मैं घर लौटा। नित्य की ही भांति उस रात्रि भी मैं ध्यान के लिए बैठा। बस फर्क थोड़ा था आज सद्गुरु के चरण मेरी ध्यानस्थ चेतना का केन्द्र थे। वे चरण कब अनन्त विराट् परब्रह्म बन गए पता ही नहीं चला। बस उसी रात मैंने जीवन की चिरप्रतीक्षित परमसिद्धि प्राप्त कर ली। उस दिन से माया का कोई भी परदा उस परमानन्दमय जगत् स्रष्टा की छवि को मेरे नेत्रों से ओझल नहीं कर सका है। यह कहते हुए स्वामी प्रणवानन्द का मुखमण्डल प्रसन्नता से दमक उठा। स्वामी योगानन्द लिखते हैं कि गुरु महिमा की यह कथा सुनकर मेरा भय भी नष्ट हो गया।

योगानन्द द्वारा कही गयी यह योगकथा गुरुचरणों की महिमा को प्रकट करती है। गुरुचरण ही अपने ता!त्त्विक रूप में परब्रह्म का स्वरूप है। लेकिन इसे जाना और समझा तभी जा सकता है- जब

साधक अपनी गुरुभक्ति की साधना के शिखर पर आरूढ़ हो गया है। एक सन्त कवि ने इस तथ्य को एक पंक्ति में कहने की कोशिश की है– 'श्री गुरुचरणों में नेह। साधन और सिद्धि है येह।' अर्थात् गुरुचरणों में अनुराग साधना भी है और सिद्धि भी। साधना के रूप में इसका प्रारम्भ होता है, तो इसके तात्त्विक स्वरूप के दर्शन में इसकी सिद्धि की चरम परिणति होते हैं। हममें से अनेक गुरुपद अनुरागी यह जानना चाहेंगे की इस साधना की शुरूआत कैसे करें ? तो इसका सरल उत्तर है कि गुरुचरणों के भाव भरे ध्यान से। भाव भरे ध्यान का मतलब इस अटल विश्वास से है कि सद्गुरु का स्थूल रूप ही और कुछ नहीं परब्रह्म का ही घनीभूत प्राकट्य है।

वही भक्तवत्सल भगवान् हमारे कल्याण के लिए शिष्यवत्सल गुरुदेव के रूप में प्रकट हुए हैं। बिना किसी शर्त के, बिना किसी मांग के, बिना किसी अधिकार के, स्वयं को उनके श्री चरणों में न्यौछावर कर देना ही गुरुचरणों की सच्ची सेवा है। इससे हमारे जन्म-जन्मान्तर के सारे पाप धुल जाते हैं और आत्मा का विशुद्ध स्वरूप निखरने लगता है। साथ ही अन्तर्चेतना में अयमात्मा ब्रह्म की अनुभूति प्रकट और प्रत्यक्ष हो जाती है। इस कथन में तर्कपूर्ण कल्पना का जाल नहीं, बल्कि असंख्य साधकों की साधनात्मक अनुभूति संजोयी है। सद्गुरु के चरणों का प्रभाव एवं प्रताप ही ऐसा है। इसकी महिमा कथा का और अधिक विस्तार अगले मंत्रों में है।



गुरु-चरण व रज का माहात्म्य

गुरुगीता के महामंत्र साधकों का पग-पग पर मार्गदर्शन करते हैं। साधना की सुगम, सरल, सहज विधियाँ सुझाते हैं। साधकों को इस गुह्यतत्त्व का बोध कराते हैं कि तुम क्यों इधर-उधर भटक रहे हो, क्यों व्यर्थ में परेशान हो ? परम कृपालु सद्गुरु के होते हुए तुम्हें किसी भी तरह से भटकने या परेशान होने की जरूरत नहीं है। सद्गुरु के प्रति भाव भरा समर्पण सभी भव रोगों की अचूक दवा है। समस्याएँ भौतिक हों या आध्यात्मिक, लौकिक हों या अलौकिक गुरुचरणों में सभी के सारे समाधान समाए हैं। पिछले मंत्रों में गुरुचरणों की इसी महिमा की चर्चा की गई है। गुरु चरणों की कृपा से गुरुभक्त साधक को साधना का परम प्राप्य अनायास ही सुलभ हो जाता है। गुरु चरण सेवा से जीव 'अयमात्माब्रह्म' के दुर्लभ बोध को सुगमता से पा लेता है।

गुरुभक्ति की इसी भावकथा को आगे बढ़ाते हुए देवों के भी परम देव भगवान् सदाशिव आदिमाता पार्वती से कहते हैं-

गुरुपादाम्बुजं स्मृत्वा जलं शिरसि धारयेत्।
सर्वतीर्थावगहस्य सम्प्राप्नोति फलं नरः ॥१२॥
शोषकं पापपङ्कस्य दीपनं ज्ञानतेजसाम्।
गुरुपादोदकं सम्यक् संसारार्णवतारकम् ॥१३॥
अज्ञानमूलहरणं जन्मकर्मनिवारणम्।
ज्ञानवैराग्यसिद्ध्यर्थं गुरुपादोदकं पिबेत ॥१४॥

सद्गुरु के चरणों का स्मरण करते हुए जल को सिर पर डालने से मनुष्य को सभी तीर्थों के स्नान का फल प्राप्त होता है॥ ॥१२॥ श्री गुरु चरणों का जल पाप पंक को सुखाने वाला और ज्ञान तेज के दीपक को प्रकाशित करने वाला है। गुरुचरण जल की महिमा से मनुष्य ठीक

तरह से संसार सागर को पार कर जाता है ॥१३॥ गुरु चरणों का जल पीने से अन्तर्भूमि में गहराई से जमा हुआ अज्ञान का महावृक्ष जड़ से उखड़ जाता है। जन्म-कर्म के बन्धन का निवारण होता है। गुरु पादोदक के पान से साधक को ज्ञान-वैराग्य की सहज सिद्धि होती है ॥१४॥

भगवान् भोलेनाथ के मुख से उच्चरित ये महामंत्र गहरे और गहन भावों से भरे हुए हैं। इनका श्रवण और पठन सम्भव है। सामान्य जनों को कुछ अतिशयोक्ति जैसा लगे। किन्तु जो साधक इस पर मनन और निदिध्यासन करेंगे, उन्हें इन महामंत्रों से सत्य और ऋत् की प्रकाश किरणें फूटती अनुभव होगी। इस अनुभूति के क्षणों में उन्हें ऐसा लगेगा कि जो कुछ इन मंत्रों में है, वह तो मात्र संकेत है यथार्थ तो कहीं और भी अधिक विस्तृत और विराट् है।

इसे सुस्पष्ट रीति से समझाने के लिए इन पंक्तियों में एक गुरुभक्त साधक की अनुभूति कथा प्रस्तुत की जा रही है। यह अनुभूति कथा सम्पूर्णतया सत्य है। यह सत्य घटना श्री अरविन्द आश्रम पाण्डिचेरी के श्रेष्ठ साधक गंगाधरण के बारे में है। अभी कुछ ही वर्षों पूर्व वह अपनी पार्थिव देह को छोड़कर अपने सद्गुरु के चरणों में विलीन हुए। बातचीत के क्रम में उन्होंने अपने साधनामय जीवन का का रहस्य बताते हुए कहा कि श्रेष्ठ सुगम किन्तु सर्वाधिक फलदायी एवं प्रभावोत्पादक साधना अपने सद्गुरु के चरणों का चिन्तन और ध्यान है।

उन्होंने बताया कि जब मैं पाण्डिचेरी आश्रम महर्षि अरविन्द के पास आया, उस समय मेरी उम्र मात्र १७ साल थी। पढ़ा-लिखा कुछ खास था नहीं, सामान्य तमिल बोल पाता था। जिस समय वह अपना अनुभव बता रहे थे उस समय उनकी आयु लगभग ८७ साल थी। तो अपने जीवन के बारे में बताते हुए उन्होंने कहा- श्री अरविन्द से पहली बार मिलने पर उन्होंने पूछा- तुम यहाँ क्यों आए हो ? और क्या

चाहते हो? उनके इन सवालों के जवाब में मैंने कहा- प्रभु! मैं नहीं जानता कि मैं क्यों आया हूँ, नहीं मालूम मेरी चाहत क्या है? वैसे तो मैं काफी गरीब हूँ, पर मैं इतना कह सकता हूँ कि मैं यहाँ केवल रोटी खाने के लिए नहीं आया।

इस सरल उत्तर पर श्री अरविन्द बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने माताजी से कहा कि यह लड़का अपने योग के लिए तैयार है। इसके बाद गंगाधरण जी को आश्रम के कामों में लगा दिया गया। नाली साफ करना, गौशाला की सफाई करना जैसे साधारण काम उन्हें करने पड़ते थे। विगत यादों को कुरेदते हुए गंगाधरण जी ने बताया- कि मुझे दिए जाने वाले काम तो अतिसाधारण थे। पर मैं श्री अरविन्द के चरणों का चिन्तन करते हुए भक्ति के साथ करता था। काम के प्रति मेरा यही भाव था कि मैं आश्रम के साधारण काम नहीं बल्कि अपने सद्गुरु की व्यक्तिगत सेवा कर रहा हूँ।

दिन-महीने और साल बीतते गए। एक बार जन्म दिवस के अवसर पर माताजी से मिलना हुआ। प्रेमपूर्वक आशीष देते हुए माता जी ने पूछा- बोल, तुझे जन्मदिन के अवसर पर क्या चाहिए? उत्तर में मैने विनम्रता से कहा, माँ! यदि आप कुछ देना चाहती हैं, तो मुझे आप अपनी और श्री अरविन्द की चरण रज एवं आप दोनों का चरण जल दीजिए। इस भक्तिपूर्व आग्रह को माताजी ने स्वीकार कर लिया। फिर तो हर वर्ष जन्मदिन के अवसर पर यह क्रम बन गया। बाद में चरण रज को सामान्य धूल में मिलाकर और चरण जल को गंगाजल में मिलाकर रखने की मेरी आदत बन गयी। बीतते वर्षों के साथ श्री अरविन्द ने शरीर छोड़ दिया। माताजी भी नहीं रहीं। परन्तु जिस किसी तरह मेरे पास उनकी चरण रज एवं चरण जल बनी रही।

गंगाधरण जी ने बताया कि अपनी पूजा की चौकी पर मैं इन दोनों दुर्लभ वस्तुओं को रखता था। इन्हीं के पास पूजा वेदी पर श्री अरविन्द के दोनों महाग्रन्थ 'लाइफ डिवाइन' एवं 'सावित्री' भी सजा

कर रखे थे। श्री अरविन्द एवं माँ के महानिर्वाण के बाद इन दिव्य वस्तुओं की पूजा मेरे जीवन का आधार बन गयी। पढ़ा-लिखा न होने के कारण और करता भी क्या? लाइफ डिवाइन एवं सावित्री को समझ सकने लायक बुद्धि भी तो नहीं थी मेरी। सद्गुरु चरण रज एवं सद्गुरु चरण जल के साथ इनकी पूजा मेरा नित्य का क्रम था। साथ ही आश्रम के कामों को भी गुरुभक्ति समझ कर करता था।

एक दिन अपने सद्गुरु के बारे में सोचते हुए गंगाधरण जी का हृदय भर आया। वह सोचने लगे कि सत्तरह साल की आयु में आये थे और अस्सी से ज्यादा उम्र होने जा रही है। परन्तु अभी तक कोई विशेष अनुभूति नहीं हुई। यही सोच कर वह पूजा स्थली पर गुरु चरण रज एवं चरण की पूजा करते हुए प्रार्थना करने लगे- हे अन्तर्यामी गुरुदेव, हे जगन्माता! मैं तो आपका अज्ञानी बालक हूँ, पढ़ना-लिखना भी ढंग से नहीं जानता। जो आपने अपना दिव्य ज्ञान लिखा है। उसे मैं पढ़ भी नहीं सकता। हे सर्वसमर्थ प्रभु! मुझे तो बस आपकी कृपा का भरोसा है, उनकी यह भावभरी प्रार्थना अनवरत चलती रही। आँखों से आँसू झरते रहे। पता नहीं कितनी देर तक यह क्रम चला। उन्हें होश तो तब आया जब स्वयं श्री अरविन्द एवं माताजी अपने अतिमानसिक शरीर से उनके पास आए। अतिमानसिक प्रकाश से उनका कण-कण भर गया। श्री अरविन्द ने कृपा करके उन्हें अतिमानसिक जगत् की दिव्य अनुभूतियाँ प्रदान कीं। अपने इस संस्मरण का उपसंहार करते हुए गंगाधरण ने कहा- मुझे तो सब कुछ गुरुचरणों की रज एवं जल ने दे दिया। यह सत्य कथा हमारे-आपके जीवन की भी सत्यकथा बन सकती है। सद्गुरु चरणों की महिमा है ही कुछ ऐसी।



साक्षात् भगवान विश्वनाथ होते हैं सद्गुरु

गुरुगीता के महामंत्रों में साधना का परम रहस्य है। इसे जानने वाला जीवन की सारी भटकन से क्षण में ही उबर जाता है। जब समर्थ सद्गुरु के चरणों का आश्रय सुलभ हो, तब भला और कहीं भटकने से क्या फायदा? दयामय गुरुदेव के चरणों की महिमा की कथा उपरोक्त मंत्रों में कहीं गयी है। इसमें भगवान् महादेव ने माता पार्वती को बताया है कि सद्गुरु के चरणों का जल से किस तरह से साधक को यौगिक ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। किस तरह उसमें ज्ञान-वैराग्य आदि गुणों का विकास होता है। शिष्य के अन्तर्मन में ज्यों-ज्यों गुरु भक्ति प्रगाढ़ होती है, त्यों-त्यों उसका अन्तःकरण ज्ञान के प्रकाश से भरता जाता है। 'गुरुकृपा ही केवलम्' शिष्य के साधनामय जीवन का एक मात्र सत्य है।

इसे समझाते हुए देवाधिदेव भगवान् महादेव जगदम्बा पार्वती से आगे कहते हैं-

गुरोः पादोदकं पीत्वा गुरोरुच्छिष्टभोजनम्।
गुरुमुर्तेः सदा ध्यानं गुरुमन्त्रं सदा जपेत् ॥१५॥
काशीक्षेत्रं तन्निवासो जाह्नवी चरणोदकम्।
गुरुःविश्वेश्वरः साक्षात् तारकं ब्रह्मनिश्चितम् ॥१६॥
गुरोः पादोदकं यत्तु गयाऽसौ सोऽक्षयोवटः।
तीर्थराज प्रयागश्च गुरुमूर्त्यै नमोनमः ॥१७॥

गुरु भक्त साधक की समर्थ साधना का सार इतना ही है कि वह गुरु चरणों के जल (चरणामृत) को पिए। गुरु को पहले भोज्य पदार्थों को समर्पित कर बाद में स्वयं उन्हें प्रसाद रूप में ग्रहण करे ॥१५॥ गुरु का निवास ही मुक्तिदायिनी काशी है। उनका चरणोदक ही इस काशीधाम को आध्यात्मिक ऊर्जा से भरने वाला गंगाजल है। गुरुदेव

ही भगवान् विश्वनाथ है। वही साक्षात् तारक ब्रह्म है ॥१६॥ गुरुदेव का चरणोदक गया तीर्थ है। वह स्वयं अक्षयवट एवं तीर्थराज प्रयाग है। ऐसे सद्गुरु भगवान् को प्रणाम करना, नमन करना ही साधक के जीवन का सार सर्वस्व है ॥१७॥

इन मंत्रों के भाव गहन हैं, पर इनकी साधना अति सुगम और महाफलदायी है। जब सर्वदेव देवीमय कृपालु सद्गुरु का सान्निध्य हमें सुलभ है, तब अन्यत्र क्यों भटका जाय? गुरुदेव का चरणोदक महाप्रभावशाली है। यह सामान्य जल नहीं है। इसमें तो उनकी तप चेतना घुली रहती है। गुरुदेव जब स्थूल कलेवर में नहीं हैं, तब ऐसी स्थिति में जल पात्र में उनके चरणों की भावना करते हुए चरणोदक तैयार किया जा सकता है। इसका पान साधक के हृदय में भक्ति को प्रगाढ़ करता हैं। इसी तरह साधक का भोजन भी गुरुदेव का प्रसाद होना चाहिए। स्वयं भोजन करने से पहले गुरुदेव को भोग लगाए। मन ही मन सभी भोज्य पदार्थों को उन्हें अर्पित करे। प्रगाढ़ता से भावना करे कि कृपालु गुरुदेव हमारे द्वारा अर्पित पदार्थों को ग्रहण कर रहे हैं। बाद में उस भोजन को उनका प्रसाद समझ कर ग्रहण करे।

मनुष्य शरीर में होने पर भी सद्गुरु कभी भी सामान्य मनुष्य नहीं होते। वह तो परमात्म चेतना का घनीभूत रूप है। उनका निवास शिष्यों के लिए मुक्तिदायिनी काशी है। इस कथन में तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। क्योंकि सद्गुरु जहाँ रहते हैं, वहाँ उनकी तपश्चेतना का घनीभूत प्रभाव छाया रहता है। न जाने कितने देवी-देवता, ऋषि-महर्षि सिद्धजन उनसे मिलने के लिए आते हैं। उनकी आध्यात्मिक ऊर्जा भी उस क्षेत्र में घुलती रहती है। इस समस्त ऊर्जा की आध्यात्मिक प्रतिक्रिया अपने आप ही वहाँ रहने वालों पर पड़ती रहती है। जिनका हृदय अपने गुरु के प्रति भक्ति से भरा है। जो गुरुदेव की चेतना के प्रति ग्रहणशील है, ऐसे भक्त साधकों का मोक्ष निश्चित है। गुरुधाम में निवास काशीवास से किसी भी तरह से कम नहीं है।

श्रद्धालुजनों में काशीवास के प्रति गहरी आस्था है। लोग वृद्धावस्था में घर-परिवार के मोह को छोड़कर काशी जाकर रहा करते थे। क्योंकि शास्त्र-पुराण सभी एक स्वर से कहते ही कि काशीवास करने से काशी में जाकर शरीर छोड़ने से फिर से जीवन भवबन्धनों में नहीं पड़ता। भगवान् भोलेनाथ उसे मुक्ति प्रदान करते हैं। वही सभी जनों के मुक्तिदाता कृपालु भोलेनाथ माता पार्वती से गुरुगीता में कहते हैं कि गुरुधाम किसी भी तरह से काशी से कम नहीं है। गुरु जहाँ भी रहते हैं, वहीं काशी है। इस काशी के विश्वनाथ स्वयं गुरु है। वही साक्षात् तारक ब्रह्म का स्वरूप है। उनकी कृपा से शिष्य को अनायास और अप्रयास ही मुक्ति लाभ होता है। गुरुचरणों का जल ही इस काशी में गंगा की जलधारा है। जिसका एक कण भी जीवों को त्रिविध तापों से छुटकारा देता है।

भगवान् सदाशिव इस प्रकरण को और अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि गुरुदेव का चरणोदक काशी तीर्थ तो है ही, गयातीर्थ भी है। सनातन धर्म को मानने वाले सभी जन गया की महिमा से परिचित हैं। गया वह पवित्र क्षेत्र है, जहाँ प्रेतात्माओं को मुक्ति मिलती है। पुराणों में कथा है कि भगवान् विष्णु ने यहाँ पर गयासुर का वध किया था। असुर होने के बावजूद गयासुर के मन में भगवान् के प्रति भक्ति भी थी। इस भक्ति से प्रसन्न होकर भगवान् विष्णु ने उससे वरदान मांगने के लिए कहा। तब गयासुर ने सृष्टि के पालनहार विष्णु से यह वर मांगा कि प्रभु यहाँ जो भी अपने पितरों का श्राद्ध करे, अथवा प्रेतयोनि में किसी भी आत्मा के लिए कोई यहाँ श्राद्ध संकल्प करे, तो उस पितर और प्रेत आत्माओं की मुक्ति हो जाए।

गुरुचरणों और चरण जल का प्रभाव भी कुछ ऐसा ही है। गुरुचरण केवल गुरुभक्त शिष्य के लिए ही कल्याणकारी नहीं है। बल्कि उनके लिए भी कल्याणकारी है, जिनके कल्याण की कामना उस शिष्य के मन में उठती है। अपने गुरु का सच्चा शिष्य जिस किसी

के लिए भी कल्याण की प्रार्थना करेगा, उसका कल्याण हुए बिना नहीं रहेगा। गुरुदेव के चरणों का सान्निध्य अक्षय वट एवं तीर्थराज प्रयाग की भाँति है, जहाँ की गयी थोड़ी सी भी साधना अनन्त गुना फलवती हो जाती है। यहाँ थोड़े से भी शुभकर्म अपरिमित एवं असीम फलदायी होते हैं। ऐसे कृपालु गुरुदेव के चरणों में साधक-शिष्यों का बार-बार नमन कल्याणकारी है।

कृपालु गुरुदेव की महिमा का अथ-इति से रहित अनन्त स्वरूप भगवान् भोलेनाथ के सिवा और कौन जान सकता है। सद्गुरु का स्मरण-चिन्तन ही शिष्य के लिए महासाधना है। जिससे जीवन में सभी सुफल अनायास ही मिल जाते हैं।



स्वयं से कहो-शिष्योऽहम्

गुरुगीता की भक्ति कथा गुरुभक्तों के लिए अमृत सरोवर है। इसके अवगाहन से मिलने वाले भक्ति-संवेदन गुरु भक्त साधक को सहज ही सद्गुरु कृपा का संस्पर्श करा देते हैं। परम कृपालु सद्गुरु की कृपा साधक के सभी दोष-दुर्मति जन्य विकारों का हरण करके उसे जीवन के परमलक्ष्य की प्राप्ति करा देती है। इसी सत्य को दर्शाते हुए गोस्वामी तुलसीदास ने एक स्थान पर कहा है-

तुलसी सद्गुरु त्यागि कै, भंजहि जे पामर भूत।
अंत फजीहत होहिं गे, गनिका के से पूत॥

जो पामर मनुष्य परम कृपालु सद्गुरु और उनके बताए साधन मार्ग को छोड़ कर तंत्र-मंत्र भूत-प्रेतों में उलझे रहते हैं, उनकी अन्त में भारी फजीहत होती है। वे गणिका पुत्र की भांति हर कहीं दुत्कारे और फटकारे जाते हैं।

सद्गुरु की कृपा साधक का परम आश्रय है। इस तत्त्व की अनुभूति कैसे और किस तरह हो यही तो गुरुगीता के प्रत्येक मंत्र में उद्घाटित हो रहा है। पिछले मंत्र में भगवान् सदाशिव ने जगन्माता पार्वती को बताया कि गुरु चरणामृत की महिमा अतुलनीय है। गुरु प्रसाद श्रेष्ठतम है। गुरु का सान्निध्य ही पवित्र काशीधाम है। गुरुदेव ही भगवान् विश्वेश्वर हैं। वही तारक ब्रह्म है। अक्षयवट और तीर्थराज प्रयाग भी वही है। भगवान् महादेव एक ही सत्य को बार-बार सुनाते हैं, बताते हैं, समझाते हैं- अन्यत्र कहीं भटको मत, अन्यत्र कहीं उलझो मत, अन्यत्र कहीं अटको मत। उन्हीं की शरण गहो, जिन्होंने तुम्हें मंत्र का दान दिया, जिन्होंने जीवन की राह दिखाई। जो हर पल, हर क्षण अपनी अजस्र कृपा तुम पर बरसाते रहते हैं।

इस कृपा के धारण व ग्रहण की विधि बताते हुए भगवान् सदाशिव माता पार्वती से कहते हैं-

गुरुमूर्तिं स्मरेन्नित्यं गुरुनाम सदा जपेत्।
गुरोराज्ञां प्रकुर्वीत गुरोरन्यत्र भावयेत्॥१८॥
गुरुवक्त्रस्थितं ब्रह्म प्राप्यते तत्प्रसादतः।
गुरोर्ध्यानं सदा कुर्यात् कुलस्त्री स्वपतेर्यथा॥१९॥
स्वाश्रयं च स्वजातिं च स्वकीर्तिं पुष्टिवर्धनम्।
एतत्सर्वं परित्यज्यं गुरोन्यत्र भावयेत्॥२०॥

सद्गुरु कृपा से अपने जीवन में भौतिक, आध्यात्मिक, लौकिक-अलौकिक समस्त विभूतियों को पाने की चाहत रखने वाले साधक को सदा ही गुरुदेव की छवि का स्मरण करना चाहिए। उनके नाम का प्रति पल, प्रति क्षण जप करना चाहिए। साथ ही गुरु आज्ञा का जीवन की सभी विपरीतताओं के बावजूद सम्पूर्ण निष्ठा से पालन करना चाहिए। अपने जीवन में कल्याण कामना करने वाले साधक को गुरुदेव के अतिरिक्त अन्य कोई भावना नहीं रखनी चाहिए॥१८॥ गुरु के मुख में ब्रह्मा का वास है। इस कारण उनके मुख से बोले हुए शब्द ब्रह्म वाक्य ही हैं। गुरु कृपा प्रसाद से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। परम पतिव्रता स्त्री जिस तरह से सदा ही अपने पति का ध्यान करती है। ठीक उसी तरह अध्यात्म तत्त्व के अभीप्सु साधक को अपने गुरु का ध्यान करना चाहिए॥१९॥ साधक में इस ध्यान की प्रगाढ़ता कुछ इस कदर होनी चाहिए कि उसे अपना आश्रम, अपनी जाति, अपनी कीर्ति का पोषण, वर्धन, सभी कुछ भूल जाय। गुरु के अलावा अन्य कोई भावना उसे न व्यापे॥२०॥

इन महामंत्रों का मनन और इनका आचरण साधकों के लिए राजमार्ग है। साधना का यह पथ बड़ा ही सरल, सुगम और निरापद है। श्री रामकृष्ण परमहंस देव के अनेक शिष्य थे। उनमें से कई बहुत पढ़े-लिखे, विद्वान और तपस्वी थे। स्वामी विवेकानन्द जी महाराज

की अलौकिक प्रतिभा से तो समूची दुनिया चमत्कृत रह गयी। इन शिष्यों में एक लाटू महाराज भी थे। निरे अपढ़-गंवार, विद्या-बुद्धि का कोई चमत्कार उनमें नहीं था। बस हृदय में भक्ति थी। न वे शास्त्र चर्चा के गाम्भीर्य में डूब सकते थे और न ही किसी से शास्त्रार्थ कर सकते थे। पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान तो उन्हें छू भी नहीं गया था। अपनी इस स्थिति पर विचार कर उन्होंने परमहंस देव से कहा- ठाकुर! मेरा कैसे होगा? श्री श्री ठाकुर ने उन्हें आश्वस्त करते हुए कहा- तेरे लिए मैं हूँ न। बस मेरा नाम स्मरण करने से मेरा ध्यान करने से सब कुछ हो जाएगा।

तब से लाटू महाराज का नियम बन गया- अपने गुरुदेव श्री रामकृष्ण परमहंस का नाम स्मरण, उन्हीं का ध्यान और उनकी सेवा। ठाकुर की आज्ञा ही उनके लिए सर्वस्व हो गयी। यह सब करते हुए उनके जीवन में आश्चर्यजनक आध्यात्मिक परिवर्तन हुए। अनेकों दैवी घटनाएँ एवं चमत्कारों ने उनकी साधना को धन्य किया। उनके अद्भुत आध्यात्मिक जीवन और योग शक्तियों के अद्भुत विकास को देखकर स्वामी विवेकानन्द ने उन्हें अद्भुतानन्द नाम दिया। श्री रामकृष्ण संघ में वह इसी नाम से विख्यात् हुए। स्वामी विवेकानन्द उनके बारे में कहा करते थे- लाटू ठाकुर का चमत्कार है। वह इस बात का प्रत्यक्ष प्रमाण है कि गुरु स्मरण, गुरुसेवा और गुरु की आज्ञापालन से सब कुछ सम्भव हो सकता है। जो जन्म-जन्मान्तरों के तप से सम्भव नहीं, वह सद्गुरु कृपा से सहज ही साकार हो जाता है।

सद्गुरु के मुख में ब्रह्म का वास होता है। उनकी वाणी ब्रह्म वाणी है। उनके द्वारा बोले गए वचन ब्रह्म वाक्य हैं। महान् दार्शनिक योगी भगवान् शंकराचार्य ने कहा है- मंत्र वही नहीं है, जो वेद और तन्त्र ग्रन्थों में लिखे हैं। मंत्र वे भी हैं जिन्हें गुरु कहते हैं। सद्गुरु के वचन महामंत्र हैं। इनके अनुसार साधना करने वाला जीवन के परम

लक्ष्य को पाए बिना नहीं रहता। पतिव्रता स्त्री की भांति मन, वाणी और कर्म की सम्पूर्ण निष्ठा को नियोजित करके गुरुदेव भगवान् का ध्यान करना चाहिए। भावना हो या चिन्तन अथवा फिर क्रिया सभी कुछ सम्मिलित रूप से एक ही दिशा में- सद्गुरु के चरणों की ओर प्रवाहित होना चाहिए।

ध्यान रहे इस महासाधना में अपना कोई बड़प्पन आड़े न आए। अपना कोई क्षुद्र स्वार्थ इसमें बाधा न बने। श्री रामकृष्णदेव कभी-कभी हँसते हुए अपने भक्तों से कहते थे- कुछ ऐसे हैं, जिनके मन में तो भगवान् के प्रति और गुरु के प्रति भक्ति है, परन्तु उन्हें लाज लगती है, शरम आती है कि लोग क्या कहेंगे? आश्रम एवं कुल की झूठी मर्यादा, अपनी जाति का अभिमान, यश-प्रतिष्ठा का लोभ उन्हें गुरु की सेवा करने में बाधा बनता है। परमहंस देव जब यह कह रहे थे तो उनके एक भक्त शिष्य मास्टर महाशय ने पूछा, तो फिर मार्ग क्या है? इन सबको छोड़ दो, त्यागो इन्हें, तिनके की तरह। सद्गुरु की आज्ञापालन में जो भी बाधाएँ सामने आएँ, उनसे मुँह मोड़ने में कभी कोई संकोच नहीं करना चाहिए।

स्वामी विवेकानन्द महाराज कहा करते थे- तुम अपने से पूछो- कोऽहम्? मैं कौन हूँ? देखो तुम्हें क्या उत्तर मिलता है। हो सकता है तुम्हें उत्तर मिले मैं पुत्र हूँ, पिता हूँ, पति हूँ, अथवा पत्नी हूँ, मां हूँ, पुत्री हूँ। ऐसे उत्तर मिलने पर और गहराई में उतरो- गुरुचरणों में और ज्यादा नेह बढ़ाओ। फिर तुम्हें एक और सिर्फ एक उत्तर मिलेगा- 'शिष्योऽहम्' मैं शिष्य हूँ। सारे रिश्ते-नाते इस एक सम्बन्ध में विलीन हो जाएँगे। ध्यान रहे जो शिष्य है, वही साधक हो सकता है। उसी में जीवन की समस्त सम्भावनाएँ साकार हो सकती हैं। और जो सच्चा शिष्य है- उसके सभी कर्त्तव्य अपने गुरु के लिए हैं। ऐसे कर्त्तव्यनिष्ठ शिष्य को सद्गुरु कृपा किस रूप में फलती है, इसका बोध भगवान् भोलेनाथ ने गुरुगीता के अगले मंत्रों में कराया है।



समर्पण-विसर्जन-विलय

गुरुगीता के महामंत्रों में साधना जीवन का परम सत्य निहित है। इनमें वह परम रहस्य संजोया है, जिसके आचरण का स्पर्श पारसमणि की भाँति है। जो छूने भर से साधक के अनगढ़ जीवन और कुसंस्कारों को आमूल-चूल बदल देता है। गुरु कृपा से मानवीय कमियाँ-कमजोरियाँ ईश्वरीय विभूतियों व उपलब्धियों में बदल जाती है। गुरु निष्ठा से क्या नहीं हो सकता? इस प्रश्न चिन्ह का एक ही उत्तर है सब कुछ सम्भव है-सब कुछ सम्भव है। इसलिए हानि में-लाभ में, यश में-अपयश में, जीवन में-मरण में, किसी भी स्थिति में सद्‌गुरु का आश्रय नहीं छोड़ना चाहिए। क्योंकि परम कृपालु सद्‌गुरु का प्रत्येक अनुदान उनकी कृपा ही है। ये अनुदान सुख भरे हों या फिर दुःख से सने हों, साधक के साधनामय जीवन के लिए कल्याण कारी ही हैं। परम रहस्य सद्‌गुरु की कृपा भी बड़ी ही रहस्यमय होती है। इसका बौद्धिक विवेचन किसी भी तरह सम्भव नहीं। इसे तो बस सजल भावनाओं में ग्रहण किया जा सकता है।

गुरु गीता के उपरोक्त मंत्रों में इसके धारण ग्रहण की कतिपय विधियों का उल्लेख किया गया है। गुरुदेव की छवि का स्मरण, उनके नाम का जप, जीवन की विपरीतताओं में भी गुरुवर की आज्ञा का निष्ठा पूर्वक पालन साधक को गुरु कृपाा का सहज अधिकारी बनाता है। गुरु के मुख में तो ब्रह्म का वास है वे जो भी बोलें वह शिष्य के लिए ब्रह्मवाक्य है। गुरुकृपा ही साधक को ब्रह्मानुभूति का वरदान देती है। परम पतिव्रता स्त्री जिस तरह से हमेशा ही अपने पति का ध्यान करती है, ठीक उसी तरह से साधक को अपने गुरु का ध्यान करना चाहिए। यह ध्यान इतना प्रगाढ़ हो कि उसे अपना आश्रय,

जाति, कुल, गोत्र सभी कुछ भूल जाय। गुरु के अलावा कोई अन्य भावना उसे न भाये।

इस भक्ति कथा में नई कड़ी जोड़ते हुए भगवान महादेव माता पार्वती को समझाते हैं-

अनन्यश्चिन्तयन्तो मां सुलभं परमं पदम्।
तस्मात् सर्वप्रयत्नेन गुरोराधनं कुरु ॥२१॥
त्रैलोक्ये स्फुटवक्तारो देवाद्यसुरपन्नगाः।
गुरुवक्त्रस्थिता विद्या गुरुभक्तया तु लभ्यते ॥२२॥
गुकारस्तवन्धकारश्च रुकारस्तेज उच्यते।
अज्ञानग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः ॥२३॥
गुकारः प्रथमो वर्णो मायादिगुणभासकः।
रुकारो द्वितीयो ब्रह्म मायाभ्रान्ति विनाशनम् ॥२४॥
एवं गुरुपदं श्रेष्ठं देवानामपि दुर्लभं।
हाहाहूहू गणैश्चैव गन्धर्वैश्च प्रपूज्यते ॥२५॥

शिष्य को यह तथ्य भलीभाँति आत्म सात् कर लेना चाहिए कि सद्गुरु का अनन्य चिंतन मेरा ही (भगवान सदाशिव) चिंतन है। इससे परमपद की प्राप्ति सहज सुलभ होती है। इसलिए कल्याण कामी साधक को प्रयत्न पूर्वक गुरु आराधना करनी चाहिए ॥२१॥ तीनों लोकों के देव-असुर एवं नाग आदि सभी इस सत्य को बड़ी स्पष्ट रीति से बताते हैं- कि ब्रह्म विद्या गुरुमुख में ही स्थित है। गुरुभक्ति से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है ॥२२॥ 'गुरु' शब्द में 'गु' अक्षर अन्धकार का वाचक है और 'रु' का अर्थ है प्रकाश। इस तरह गुरु ही अज्ञान का नाश करने वाले ब्रह्म है। इसमें तनिक भी संशय नहीं है ॥२३॥ शास्त्र वचनों से यह प्रमाणित होता है कि 'गुरु' शब्द के प्रथम वर्ण 'गु' से माया आदि गुण प्रकट होते हैं और इसके द्वितीय वर्ण 'रु' से ब्रह्म प्रकाशित होता है। जो माया की भ्रान्ति को विनष्ट करता है ॥२४॥ इसलिए गुरुपद सर्वश्रेष्ठ है। यह देवों के लिए भी दुर्लभ है।

हाहाहूहू गण और गन्धर्व आदि भी इसकी पूजा करते हैं॥२५॥

इन महामंत्रों के प्रत्येक अक्षर से गुरु महिमा प्रकट होती है। इस महिमा में अपने को घुला-मिला कर ही साधक की साधना सफल होती है। साधनामय जीवन की सर्वोच्च कक्षा की व्याख्या प्रस्तुत करनी हो तो उसका सार यही होगा; साधक का सद्गुरु में समर्पण-विसर्जन-विलय। अनन्य चिंतन की निरन्तरता साधक के सद्गुरु में समर्पण को सुगम बनाती है। समर्पण की परमावस्था में साधक का समूचा अस्तित्व ही विलीन हो जाता है। और तब आती है। विलीनता की अवस्था, इस भावदशा में शिष्य साधक का काय-कलेवर तो यथावत् बना रहता है, पर उसमें उसकी चेतना अनुपस्थित होती है। वहाँ उपस्थित होती है उसके सद्गुरु की चेतना । वह दिखते हुए भी नहीं होता। होता है केवल उसका सद्गुरु।

जो गुरुभक्ति की डगर पर चलने का साहस करते हैं। उन्हें दो-चार कदम आगे बढ़ते ही बहुत से साधना सत्यों का साक्षात्कार होता है। वे जानते हैं कि सद्गुरु ही साधक हैं, वही साधना है और अन्त में वही साध्य के रूप में प्राप्त होते हैं। यह कथन पहली बार में कबीर वचनों की उलटबाँसी जैसा भले ही लगे, पर थोड़ा सा ही चिंतन करने पर सब कुछ ठीक-ठीक समझ में आ जाता है। इस तत्त्व का सत्य बोध कुछ यूँ है-सद्गुरु ही साधक है, इस वाक्य का अर्थ यह है कि सामान्य देहधारी मनुष्य जब सद्गुरु की कृपा छांव में आता है, तब वह शिष्य बनता है। उस शिष्य में गुरु जब अपने एक अंश को प्रतिष्ठित करते हैं, तब साधक के रूप में उसका नवसृजन होता है। इस तरह अपने शिष्य के काय-कलेवर में दसअसल सद्गुरु ही साधक के रूप में अवतार लेते हैं।

'सद्गुरु ही साधना है' - इस वाक्य का भाव यह है कि साधना का परम दुर्गम पथ पार करना सद्गुरु की कृपा शक्ति के बिना सम्भव नहीं है। सद्गुरु की कृपा शक्ति ही साधक में साधना की शक्ति बनती

है। उसी के सहारे वह अपने साधनामय जीवन की डगर पर आगे बढ़ता है। सद्गुरु की कृपा से ही उसे साधना की विभूतियाँ एवम् उपलब्धियाँ मिलती हैं और अन्त में साध्य से उसका साक्षात्कार होता है और तब उसे इस सत्य का बोध होता है कि सद्गुरु ही साध्य है क्योंकि सद्गुरु और ईष्ट दो नहीं बल्कि एक हैं। अपने गुरु ही गोविन्द है। वही सदाशिव और परमाशक्ति हैं। ये सभी साधना के सत्य निरन्तर और लगातार सद्गुरु के अनन्य चिंतन से प्राप्त होते हैं।

प्रयत्न पूर्वक सद्गुरु की आराधना के सिवा शिष्य को कुछ भी करने की जरूरत नहीं। मन से सद्गुरु का चिंतन-स्मरण, हृदय से अपने गुरु की भक्ति, वाणी से उनके पावन नाम का जप और शरीर से उनके आदेशों का निष्ठापूर्वक पालन करने से समस्त दुर्लभ आध्यात्मिक विभूतियाँ, शक्तियाँ, सिद्धियाँ अनायास ही मिल जाती हैं। गुरु ही ब्रह्म है, उनके वचनों में ही ब्रह्म विद्या समायी है। इस सत्य को जो अपने जीवन में धारण करता है, आत्मसात् करता है, अनुभव करता है वही शिष्य है-वही साधक है। गुरु तत्त्व से भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है। इसे अनुभव करने के उपाय गुरु गीता के अगले मंत्रों में वर्णित है।



सब कुछ गुरु को अर्पित हो

गुरुगीता के महामंत्र साधनापथ के प्रदीप हैं। इनसे निःसृत होने वाली ज्योति किरणें साधकों को भटकन और उलझन से बचाती है। वैदिक ऋषिगण, अनुभवी महासाधक सभी एक स्वर से कहते हैं कि साधनापथ महादुर्गम है। इस पर निरन्तर चलते रहना महाकठिन है। फिर चलते रहकर लक्ष्य को पा लेना गुरु कृपा के बिना नितान्त असम्भव है। उपनिषद् की श्रुतियों में साधकों के लिए ऐसे ही चेतावनी भरे वचन हैं। कठउपनिषद् की श्रुति कहती है– **'क्षुरस्य धारा निशिता दुरव्यया दुर्गमं पथस्तत कवयोः वदन्ति'** अर्थात्- यह साधना पथ छुरे की धार की भाँति अति दुष्कर है। यह पथ अति दुर्गम है, ऐसा अनुभवि कवियों (ऋषियों) का कहना है। गुरुकृपा ही इस दुर्गम पथ को सुगम बनाती है। गुरु करुणा का सम्बल पाकर ही शिष्य इस पर चलने में सफल होता है। सद्गुरु के स्नेह सिंचन से ही साधक की साधना पूर्ण होती है।

उपरोत्त मंत्रों में बताया गया है कि शिष्य को यह तथ्य जान लेना चाहिए कि सद्गुरु का चिन्तन स्वयं आराध्य का ही चिन्तन है। इसलिए कल्याण की कामना को करने वाला साधक इसे अवश्य करे। तीनों लोकों में निवास करने वाले सभी इस सत्य को कहते हैं कि गुरुमुख में ही ब्रह्मविद्या स्थित है। गुरुभक्ति से ही इसे प्राप्त किया जा सकता है। गुरु ही अज्ञान के अन्धकार को हटाने वाले प्रकाश स्रोत हैं। शास्त्र वचनों से भी यही सिद्ध होता है कि गुरुकृपा से ही माया की भ्रान्ति नष्ट होती है। गुरु से श्रेष्ठ अन्य कुछ भी नहीं है।

गुरुभक्ति की इस तत्त्वकथा में नयी कड़ी जोड़ते हुए भगवान् सदाशिव माता पार्वती को समझाते हैं-

ध्रुवं तेषां च सर्वेषां नास्ति तत्त्वं गुरोः परम्।
आरानं शयनं वस्त्रं भूषणं वाहनादिकम्॥२६॥

साधकेन प्रदातव्यं गुरुसन्तोषकारकम्।
गुरोराराधनं कार्यं स्वजीवित्वं निवेदयेत्॥२७॥
कर्मणा मनसा वाचा नित्यमाराधयेद् गुरुम्।
दीर्घदण्डम् नमस्कृत्य निर्लज्जोगुरुसन्निधौ॥२८॥
शरीरमिन्द्रियं प्राणान् सद्‌गुरुभ्यो निवेदयेत्।
आत्मदारादिकं सर्वं सद्‌गुरुभ्यो निवेदयेत्॥२९॥
कृमिकीट भस्मविष्टा-दुर्गन्धिमलमूत्रकम्।
श्लेष्मरक्तं त्वचामांसं वञ्चयेन्न वरानने॥३०॥

हे श्रेष्ठमुख वाली देवी पार्वती! शिष्य को यह सत्य भली भाँति जान लेना चाहिए कि यह ध्रुव (अटल) है कि गुरु से श्रेष्ठ अन्य कोई भी तत्त्व नहीं है। ऐसे लोक कल्याण में निरत परम कृपालु गुरु के कार्य के लिए आसन, वस्त्र, आभूषण, वाहन आदि देते रहना शिष्य का कर्त्तव्य है। साधक द्वारा इस तरह लोक कल्याणकारी कार्यों में सहयोग से सद्‌गुरु को सन्तोष होता है। भगवान् शिव का कथन है कि गुरु के कार्य के लिए साधक को अपनी जीविका को भी अर्पण करना चाहिए॥२६-२७॥ कर्म, मन और वचन से नित्य गुरु आराधना करना ही शिष्य का कर्त्तव्य है। गुरु के कार्य में तनिक सी भी लज्जा करने की जरूरत नहीं है। गुरु को साष्टांग नमस्कार करना चाहिए॥२८॥ शिष्य का शरीर, इन्द्रिय, मन, प्राण सभी कुछ गुरु कार्य के लिए अर्पित होना चाहिए। यहाँ तक कि अपने साथ पत्नी आदि परिवार के सदस्यों को गुरु कार्य में अर्पण कर देना चाहिए॥२९॥ भगवान् सदाशिव कहते हैं कि हे पार्वती! यह अपना शरीर कृमि, कीट, भस्म, विष्ठा, मल-मूत्र, त्वचा, मांस आदि का ही तो ढेर है। यह यदि गुरु कार्य के लिए अर्पित हो जाय तो इससे श्रेष्ठ भला और क्या हो सकता है॥३०॥

इन महामंत्रों का प्रत्येक अक्षर साधक के साधना पथ का प्रदीप है। इससे निकलने वाली प्रत्येक किरण के प्रकाश में साधक का

साधनामय जीवन उज्ज्वल होता है। गुरु तत्त्व जितना श्रेष्ठ है, उतना ही श्रेष्ठ गुरु का कार्य है। तात्त्विक दृष्टि से दोनों एक ही है। श्री रामकृष्ण परमहंस के शिष्य स्वामी शिवानन्द जी महाराज कहते थे- 'डिवोशन टू संघ इज़ डिवोशन टू ठाकुर' यानि कि मिशन-मठ के संगठन के प्रति भक्ति ठाकुर के प्रति भक्ति है। सद्‌गुरु का कार्य सद्‌गुरु की चेतना का ही विस्तार है। जो शिष्य अपने सद्‌गुरु के कार्य के प्रति समर्पित है, यथार्थ में वही सद्‌गुरु के प्रति समर्पित है। जो सद्‌गुरु के कार्य के लिए अपने समय, श्रम एवं धन का नियोजन करते हैं, वही अपने गुरु की सच्ची आराधना करते हैं।

सद्‌गुरु की आराधना के लिए गुरु कार्य हेतु अपने साधन एवं समय का एक महत्त्वपूर्ण अंश लगाना चाहिए। गुरु कार्य छोटा हो या बड़ा उसे करने में किसी भी तरह की लज्जा नहीं होनी चाहिए। श्री रामकृष्ण परमहंस कहते थे कि लोगों को जिन कार्यों के लिए लज्जित होना चाहिए, उन्हें करने में वे लज्जित नहीं होते। बड़े मजे से झूठ, छल, कपट करते हैं, धोखाधड़ी करते हैं। इन कार्यों में उन्हें लज्जा नहीं आती है। पर गुरु की आज्ञा का पालन करने में वे शर्माते हैं। सद्‌गुरु का कार्य जो भी है, उसे भक्तिपूर्ण रीति से करना चाहिए। इसके लिए लज्जा का त्याग करने में भी कोई संकोच नहीं करना चाहिए।

कर्म ही नहीं मन और वाणी से भी गुरु आराधना करनी चाहिए। बार-बार और हमेशा ही यह सत्य ध्यान में रखना चाहिए कि गुरु आराधना गुरु की शरीर सेवा तक सीमित नहीं है। इसके व्यापक दायरे में सद्‌गुरु के विचारों का प्रसार व उनके अभियान को गति देने के लिए प्राण-पण से प्रयास करना भी शामिल है। इस हेतु न केवल स्वयं का जीवन अर्पण करना चाहिए। बल्कि अपनी पत्नी एवं परिवार के अन्य सदस्यों को लगाना चाहिए। अपनी यह देह पंचमहाभूतों के विकार के सिवा भला और है ही क्या? इस देह की सार्थकता सद्‌गुरु के कार्य के प्रति समर्पित होने में ही है।

स्वामी विवेकानन्द महाराज के दो शिष्य थे स्वामी कल्याणानन्द और स्वामी निश्चयानन्द। एक दिन स्वामी जी ने इन दोनों को अपने पास बुलाया और कहा- देखा हरिद्वार में साधुओं की सेवा की कोई व्यवस्था नहीं है। उन दिनों आज से करीब सौ वर्ष पूर्व हरिद्वार का समूचा क्षेत्र महाअरण्य था। साधु हों या फिर तीर्थयात्री इन सभी को सामान्य औषधि एवं चिकित्सा के अभाव में अनेकों कष्ट उठाने पड़ते थे। कई बार तो इन्हें मरना भी पड़ता था। स्वामी जी ने अपने इन दोनों शिष्यों को इनकी सेवा का आदेश दिया। इन दोनों साधन विहीन साधुओं के पास अपने सद्गुरु के आदेश के सिवा और कोई भी सम्पत्ति न थी। जब स्वामी कल्याणानन्द एवं स्वामी निश्चयानन्द स्वामी जी को प्रणाम करके चलने लगे, तो उन्होंने कहा- अब तुम दोनों इधर लौटकर फिर कभी न आना। बंगाल को भूल जाना। आदेश अतिकठिन था। परन्तु शिष्य भी सद्गुरु को सम्पूर्ण रीति से समर्पित थे।

बेलूड़ मठ से चलकर ये दोनों ही हरिद्वार आए। उन्होंने कनखल में अपनी झोपड़ियाँ बनाई। और जुट गए सेवा कार्यों में। दिन भर बीमार साधुओं एवं तीर्थ यात्रियों की सेवा और रात भर अपने सद्गुरु का ध्यान। कार्य चलता रहा, वर्ष बीतते रहे। इस बीच स्वामी जी ने इच्छामृत्यु का वरण किया। परन्तु सद्गुरु आदेश के व्रती ये दोनों गुरु के अन्तिम दर्शन में भी नहीं गए। गुरु कार्य के लिए उन्होंने अनेकों अपमान झेले, तिरस्कार सहे। पर सब कुछ उनके लिए गुरु कृपा ही थी। लगातार ३५ सालों तक उनका यह सेवा कार्य चलता रहा। उनके कार्यों का स्मारक आज भी कनखल क्षेत्र में श्री रामकृष्ण सेवाश्रम के रूप में स्थित है। सद्गुरु के कार्य के प्रति निष्ठापूर्ण समर्पण ने उन्हें अध्यात्म के शिखरों तक पहुँचा दिया। इन दोनों के लिए स्वामी जी ने स्वयं अपने मुख से कहा था- हमारे ये बच्चे परमहंसत्व प्राप्त कर धन्य हो जाएँगे। गुरुकृपा से यही हुआ भी। ऐसे कृपालु सद्गुरु को शत-सहस्त्र-कोटिश नमन!



आओ, गुरु को करें हम नमन

गुरुगीता अध्यात्मविद्या के साधकों की प्राणचेतना का स्रोत है। इसके महामंत्रों के अनुशीलन से साधकों को नवप्राण मिलते हैं। उनमें आत्मतत्त्व का अंकुरण होता है। ब्रह्मविद्या स्फुरित होती है। वे यह सत्य जानने में समर्थ हो पाते हैं कि सद्गुरु ही सदाशिव हैं। भगवान् महेश्वर ने ही शिष्य-साधक पर कृपा करने के लिए गुरुदेव का रूप धरा है। गुरु और ईष्ट में कोई भेद नहीं है। निराकार परब्रह्म परमेश्वर की सर्वव्यापी चेतना ही कृपालु सद्गुरुदेव के रूप में साकार हुई है। सद्गुरु को नमन ईष्ट-आराध्य को नमन है। सद्गुरु को समर्पण सर्वव्यापी परमेश्वर को समर्पण है। गुरु और गोविन्द दो नहीं है। गुरु ही गोविन्द हैं और गोविन्द ही गुरु हैं।

पूर्व मंत्र में गुरुभक्त साधकों ने इस सत्य की किंचित झलक पायी, जिसमें बताया गया है कि शिष्य को यह सत्य भली भाँति जान लेना चाहिए कि गुरु से श्रेष्ठ अन्य कोई भी तत्त्व नहीं है। ऐसे परम श्रेष्ठ और शिष्य वत्सल गुरुदेव की सेवा करना शिष्य का कर्त्तव्य है। उनके द्वारा किए जाने वाले लोक कल्याणकारी कार्यों में शिष्य को उत्साहित होकर भागीदार होना चाहिए। अंशदान-समयदान और बन सके तो जीवनदान करने में किसी भी शिष्य को कोई भी संकोच नहीं होना चाहिए। जिसे सेवा करने में अभी संकोच या हिचकिचाहट है, समझना चाहिए उसमें शिष्यत्व अंकुरित ही नहीं हुआ है। मात्र दीक्षा संस्कार का कर्मकाण्ड करा लेने भर से कोई शिष्य नहीं हुआ करता। इसके लिए तो 'सीस उतारे भुईं धरे' वाली कबीर बाबा की उक्ति को साकार करना पड़ता है। जब शिष्य बन गए तो अहं के विसर्जन में संकोच क्यों? जब हम अपने को शिष्य कहाते हैं तो फिर गुरुवर को नमन में देरी किसलिए?

गुरु नमन की महिमा को अगले महामंत्रों में प्रकट करते हुए भगवान् सदाशिव माता पार्वती को समझाते हैं-

संसारवृक्षमारूढ़ा पतन्तो नरकार्णवे।
येन चैवोद्धृताः सर्वे तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३१ ॥
गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परब्रह्म तस्मै श्रीगुरुवे नमः ॥ ३२ ॥
हेतवे जगतामेव संसारार्णवसेतवे।
प्रभवे सर्वविद्यानां शंभवे गुरवे नमः ॥ ३३ ॥
अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानाञ्जनशलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३४॥
त्वं पिता त्वं च मे माता त्वं बंधुस्त्वं च देवता।
संसारप्रतिबोधार्थं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ३५ ॥

उन सद्गुरुदेव भगवान् को शिष्य नमन करे, जो संसारवृक्ष पर आरूढ़ जीव का नरक सागर में गिरने से उद्धार करते हैं ॥ ३१ ॥ नमन उन श्रीगुरु को जो अपने शिष्य के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर होने के साथ परब्रह्म परमेश्वर हैं ॥ ३२ ॥ शिव रूपी उन सद्गुरु को नमन जो समस्त विद्याओं का उदय स्थान है। इस संसार का आदिकारण है और संसार सागर को पार करने के लिए सेतु है ॥ ३३ ॥ नमन उन श्री गुरु को जो अज्ञान के अन्धकार से अन्धे जीव की आँखों को ज्ञानाञ्जन की शलाका से खोलते हैं ॥ ३४ ॥ नमन उन श्री गुरु को जो अपने शिष्य के लिए पिता हैं, माता हैं, बन्धु हैं, ईष्ट देवता हैं और संसार के सत्य का बोध कराने वाले हैं ॥ ३५ ॥

इन महामंत्रों में सद्गुरु के नमन का विज्ञान-विधान है। गुरुतत्त्व को जान लेने पर, उनकी महिमा का साक्षात्कार कर लेने पर शिष्य को कुछ भी अप्राप्य नहीं रहता। उसे किसी का भी भय नहीं रहता। शिष्य के हृदय में जब अपने सद्गुरु के प्रति नमन के भाव उपजते रहते तब उसका सर्वत्र मंगल होता है, उसे अमंगल की छाया स्पर्श भी नहीं कर सकती। सद्गुरु को नमन शिष्य के लिए महाअभेद्य कवच है। इस सम्बन्ध में एक सत्य घटना का उल्लेख करने के लिए भावनाएँ आतुर हो रही हैं। यह घटना समर्थ गुरु रामदास और उनके शिष्य शिवराम

के सम्बन्ध में है। उन दिनों स्वामी रामदास अपने तेरह वर्षीय कठोर साधना को पूर्ण करके सारे देश में अलख जगा रहे थे।

इस क्रम में उन्हें बनारस आना था। अपनी बनारस यात्रा की चर्चा उन्होंने अपने शिष्यों से करते हुए कहा कि इस बार की यात्रा मैं अकेले ही करूँगा। सब शिष्यों ने उनका आदेश स्वीकार कर लिया, पर बालभक्त शिवराम ने जिद्द पकड़ ली कि वह भी उनके साथ जाएगा। शिवराम की आयु बारह साल थी। समर्थ गुरु ने बहुत समझाया कि बेटा तुम इतनी लम्बी यात्रा पैदल कैसे करोगे? पर बालहठ पर कोई असर नहीं हुआ। अन्त में स्वामी रामदास ने उससे कहा- अच्छा बेटा! तुम अपनी मां से आज्ञा ले लो। अगर वह आज्ञा दे देगी, तो हम तुम्हें ले चलेंगे। शिवराम की मां एक भक्तिमती विधवा महिला थी। शिवराम उनकी इकलौती सन्तान था। सन्तान के प्रति उनका जितना गहरा ममत्व था। समर्थ गुरु के चरणों में उतनी ही गहरी भक्ति थी। पुत्र की बात सुनकर उन्होंने एक पल की देर लगाये बिना आज्ञा दे दी।

शिवराम की भक्ति और उसकी मां की आस्था से द्रवित होकर समर्थ गुरु उसे अपने साथ काशी ले आए। काशी आने पर गुरु आज्ञा से शिवराम भिक्षा मांगने के लिए निकला। समर्थ रामदास और उनके शिष्यों का भिक्षा हेतु एक नियम था। वह किसी के द्वार पर खड़े होकर केवल तीन बार पुकारते थे- जय-जय रघुवीर समर्थ। तीन बार पुकारने पर यदि किसी ने भिक्षा दी तो ठीक अन्यथा आगे बढ़ जाते थे। इस तरह तीन घरों में भिक्षा मांगना उनका नियम था। तीन घरों में यदि भिक्षा न मिली तो वे उस दिन उपवास कर लेते थे। शिवराम ने भी इसी नियम के अनुसार एक द्वार पर आवाज लगायी। यह द्वार काशी के महातांत्रिक भैरवानन्द का था। भैरवानन्द को अनेको तामसी तान्त्रिक क्रियाएँ सिद्ध थीं। यह महातांत्रिक होने के साथ महाक्रोधी भी था।

अपने द्वार पर जय-जय रघुवीर समर्थ की आवाज सुनते ही वह भड़क उठा। क्रोधावेश में वह द्वार पर निकलकर आया और बालक

शिवराम को डांटते हुए बोला कि कौन है जो अपने को समर्थ कहता है। शिवराम ने बिना किसी भय के कहा– कि समर्थ हैं मेरे गुरु और उनकी सामर्थ्य का स्रोत उनके आराध्य भगवान् राम हैं। छोटे बालक को अपने सामने इस तरह बोलते हुए देख उस क्रोधी तांत्रिक ने कहा, जा मैं भैरवानन्द तुझसे कहता हूँ कि तू कल प्रातःकाल तक मर जाएगा, तेरे गुरु में सामर्थ्य है तो तुझे बचा लें। शिवराम ने समर्थ रामदास के पास उपस्थित होकर उस तांत्रिक की सारी बातें बतायी। उन बातों से भी उन्हें अवगत कराया, जो रास्ते में बनारस के लोगों ने उसे महातांत्रिक की आश्चर्यजनक शक्तियों के बारे में बतायी थी। इन सारी बातों को सुनकर समर्थ रामदास हंसे और बोले बेटा– समर्थ रघुवीर के होते डर कैसा? तू तो बस आराम से गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु वाला मन्त्र पढ़ता रह और आराम से मेरे पांव दबाए जा। इतना कहकर समर्थ रामदास लेट गए।

बालक शिवराम ने उनके पांव दबाते हुए गुरु नमन के मंत्र पढ़ने शुरू किए। इधर भैरवानन्द ने भी उसके मारण के लिए महाकृत्या का प्रयोग किया था। पूरी रात महाकृत्या ने शिवराम को मारने के लिए अनकों रूप धरे, उसको कई तरह से गुरु नमन से विरत करना चाहा। परन्तु शिवराम की अटल गुरुभक्ति के सामने उसकी एक न चली। अन्त में असफल होकर उसने भैरवानन्द पर ही अपना आक्रमण किया। महातांत्रिक अपनी क्रिया को इस तरह उलटते देखकर घबरा गया। वह भागा–भागा आकर समर्थ के चरणों में गिर गया। समर्थ रामदास ने उसे अभय देते हुए कृत्या का शमन किया और उसे चेताया गुरुगीता के गुरु नमन मंत्र साधारण नहीं है। जिसकी वाणी में ये मंत्र है और हृदय में गुरुभक्ति है, वह गुरुकृपा के कवच से सदा सुरक्षित है। कोई अभिचार क्रिया उसका कुछ नहीं बिगाड़ सकती। गुरु नमन के इन नमन मंत्रों की शृंखला में आगे कहा गया है–



शंकर रूप सद्गुरु को बारंबार नमन

गुरुगीता आध्यात्मविद्या का परमगोपनीय शास्त्र है। हां इसे समझने के लिए गहरी तत्त्वदृष्टि चाहिए। यह तत्त्व दृष्टि विकसित हो सके तो पता चलता है कि वैदिक ऋचाएँ जिस सत्य का बोध कराती हैं, उपनिषद् की श्रुतियों में जिसका बखान हुआ है, गुरुगीता में भी वही प्रतिपादित है। अठारह पुराणों में जिन परमेश्वर की लीला का गुणगान है- वही सर्वेश्वर प्रभु शिष्यों के लिए सद्गुरु का रूप धरते हैं। आध्यात्म विद्या के सभी ग्रन्थों-शास्त्रों को पढ़ने का सुफल इतना ही कि अपने कृपालु सद्गुरु के नाम में प्रीति जगे। सन्तों ने इसे कहा भी है-

पढ़िबे को फल गुनब है, गुनिबे को फल ज्ञान।
ज्ञान को फल गुरु नाम है, कह श्रुति-सन्त पुराण॥

यानि कि समस्त शास्त्रों को पढ़ने का फल यह है कि उस पर चिन्तन-मनन-निदिध्यासन हो। और इस निदिध्यासन का फल है कि साधक को तत्त्वदृष्टि मिले, उसे ज्ञान हो। तथा ज्ञान का महाफल है कि उसे सद्गुरु के नाम की महिमा का बोध हो। उनके नाम में प्रीति ज़गे। उन्हें नमन का बोध जगे। यही श्रुति, सन्त और पुराण कहते हैं।

ऊपर के मंत्रों में गुरुभक्त शिष्यों को इसकी अनुभूति कराने की चेष्टा की गयी है। इसमें बताया गया है कि शिष्य का परम कर्त्तव्य है कि वह अपने सद्गुरु को नमन करें, क्योंकि वही संसार वृक्ष पर आरूढ़ जीव का नरक सागर में गिरने से उद्धार करते हैं। नमन उनश्री गुरु को जो अपने शिष्य के लिए ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर होने के साथ स्वयं परब्रह्म परमेश्वर हैं। शिव रूपी उन सद्गुरु को नमन करना शिष्य

का परम कर्त्तव्य है, जो समस्त विद्याओं का उदय स्थान और संसार का आदि कारण हैं और संसार सागर को पार करने के लिए सेतु हैं। वे गुरुदेव भगवान् ही अज्ञान के अन्धकार से अन्धे जीव की आँखों को ज्ञानाञ्जन की शलाका से खोलते हैं। गुरुवर ही अपने शिष्य के लिए पिता है, माता है, बन्धु हैं और ईष्ट देवता हैं। वे ही उसे संसार के सत्य का बोध कराने वाले हैं। ऐसे परम कृपालु सद्गुरु को शिष्य बार-बार नमन करे और करता रहे।

गुरु महिमा के साथ गुरु नमन की महिमा ही अपरिमित है। इसे गुरुगीता के अगले महामंत्रों में प्रकट करते हुए भगवान् भोलेनाथ आदिमाता पार्वती से कहते हैं-

यत्सत्येन जगत्सत्यं यत्प्रकाशेन भाति तत् ।
यदानन्देन नन्दन्ति तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ३६॥
यस्य स्थित्या सत्यमिदं यद्भाति भानुरूपतः।
प्रियं पुत्रादि यत्प्रीत्या तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ३७॥
येन चेतयते हीदं चित्तं चेतयते न यम् ।
जाग्रत्स्वप्न सुषुप्त्यादि तस्मै श्री गुरेव नमः ॥ ३८॥
यस्य ज्ञानादिदं विश्वं न दृश्यं भिन्नमेदतः ।
सदेकरूपरूपाय तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ३९॥
यस्यामतं तस्य मतं मतं यस्य न वेद सः ।
अनन्यभाव भावाय तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ४०॥

सद्गुरु नमन के इन महामंत्रों में गहन तत्त्वचर्चा है। गुरुतत्त्व, परमात्मतत्त्व और प्रकृति या सृष्टि तत्त्व अलग-अलग नहीं है। यह सब एक ही है- भगवान् शिव के वचन शिष्य को समझाते हैं, जिस सत्य के कारण जगत् सत्य दिखाई देता है। अर्थात् जिनकी सत्ता से जगत् की सत्ता प्रकाशित होती है, जिनके आनन्द से जगत् में आनन्द फैलता है, उन सच्चिदानन्द रूपी सद्गुरु को नमन है॥३६॥ जिनके सत्य पर अवस्थित होकर यह जगत् सत्य प्रतिभासित होता है, जो सूर्य

की भाँति सभी को प्रकाशित करते हैं। जिनके प्रेम के कारण ही पुत्र आदि सभी सम्बन्ध प्रीतिकर लगते हैं, उन सद्गुरु को नमन है ॥३७॥ जिनकी चेतना से यह सम्पूर्ण जगत् चेतन प्रतीत होता है, हालांकि सामान्य क्रम में मानव चित्त को इसका बोध नहीं हो पाता। जाग्रत्-स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था को जो प्रकाशित करते हैं, उन चेतनारूपी सद्गुरु को नमन है ॥३८॥ जिनके द्वारा ज्ञान मिलने से जगत् की भेददृष्टि समाप्त हो जाती है। और वह शिव स्वरूप दिखाई देने लगता है। जिनका स्वरूप एकमात्र सत्य का स्वरूप ही है, उन सद्गुरु को नमन है ॥३९॥ जो कहता है कि मैं ब्रह्म को नहीं जानता वही ज्ञानी है। जो कहता है कि मैं जानता हूँ, वह नहीं जानता। जो स्वयं ही अभेद एवं भावपूर्ण ब्रह्म है उस सद्गुरु को नमन है ॥४॥

सद्गुरु नमन के इन महामंत्रों में गहरा तत्त्व विचार है। इनमें वेदान्त का गहन बोध है। इनमें जो कुछ भी गाया है, उसे लौकिक बुद्धि से, कोरे पाण्डित्य से समझ पाना एकदम असम्भव है। इन्हें समझने के लिए शिष्य की श्रद्धा, साधक की आस्था और महातपस्वी की निर्मल चेतना चाहिए। गहरी, परिपक्व व परिष्कृत गुरुभक्ति से इन महामंत्रों का रहस्य मानवीय चेतना में समा सकता है, अन्यथ किसी भी तरह से नहीं। तो सबसे पले इन महामंत्रों को समझने से पहले यह जान लें कि गुरुदेव केवल देह की दृष्टि से ही मनुष्य हैं, अन्यथा उनमें कोई मानवीय भाव नहीं है। उनका शरीर तो मनुष्य का है-परन्तु उसमें विद्यमान चेतना सर्वथा ईश्वरीय है। उनके जीवन के सम्पूर्ण क्रियाकलाप ब्राह्मी चेतना की ही अभिव्यक्ति है। इस सत्य को आत्मसात करने पर ही यह समझना सम्भव होता है कि ब्राह्मी चेतना के गुण, कर्म, स्वभाव ही अपने सद्गुरु के गुण-कर्म-स्वभाव है। जो ब्रह्म है वही सद्गुरु है। बस फर्क है तो इतना कि ब्रह्म निर्गुण-निराकार और निर्विशेष है। और कृपालु सद्गुरु शिष्यों पर कृपा करने के लिए ब्रह्म का सगुण-साकार और सविशेष रूप है। इसमें भी असलियत यह है

कि यह फर्क मात्र दिखता है, आभासी, दिखावटी और बनावटी है, असलियत में है नहीं। असलियत में तो गुरुदेव भगवान् साकार दिखते हुए भी निराकार हैं। एक कमरे में रहते हुए भी सर्वव्यापी हैं। अपनी बाहरी उपस्थिति के बावजूद शिष्यों के अन्त:करण के स्वामी और अन्तर्यामी हैं।

परम कृपालु सद्गुरु की देह में जिस ब्रह्म चेतना का आवास-अधिष्ठान है, वही जगत् का कारण है। उसी के सत्य से जगत् की सत्ता और आनन्द है। उसी से सभी तत्त्व और सत्य प्रकाशित है, वही सारे सम्बन्धों का आधारभूत कारण है। चेतना की सभी अवस्थाएँ सद्गुरु चेतना से ही चैतन्य है। गुरु ही शिव है, वही विश्वरूप है। उनके इस स्वरूप को जानना अति कठिन है। कोरे बुद्धिपरायण लोग भला उनकी महिमा को क्या जाने। जो उनके लौकिक क्रिया कलापों को देखकर समझकर यह कहता है कि मैं जान गया, वह उन्हें बिल्कुल भी नहीं जानता। जो भक्तिपूर्ण हृदय से उन्हें समर्पित हो जाता है, और यह कहता है कि हे प्रभु! मैं अज्ञानी आपको भला क्या जानूँ, वही उन्हें जानने का अधिकारी होता है। वही ब्रह्म है, उन्हें जानकर सब कुछ जान लिया जाता है। उन्हें नमन ही शिव-शक्ति और सृष्टि को नमन है। गुरु नमन के सत्य को जान लेने पर अन्य कुछ भी जानना शेष नहीं रहता।



शिवभाव से करें नित्य सद्गुरु का ध्यान

गुरुगीता सद्गुरु की महिमा का गायन है। सद्गुरु ही वह परम ज्योति है, जो मानव जीवन के अन्धेरे को दूर करती है। इसी के दिव्य प्रकाश से मानव चेतना प्रकाशित होती है। मानव को महामानव, देवमानव बनाते हुए उसे अयमात्मा ब्रह्म की अनुभूति देने वाले कृपालु सद्गुरु ही है। उन्हें नमन प्रभु को नमन है। गुरु नमन की भाव भरी साधना से जीवन के सभी तत्त्व, सभी सत्य अनायास ही सहज सुलभ हो जाते हैं। नमन-साधना की यह प्रक्रिया सहज-सुलभ होते हुए भी परम-दुर्लभ है। इसमें दुर्लभता उस गुरु तत्त्व के बोध की है, जो गहन-श्रद्धा से ही मिल पाता है। श्रद्धा परिपूर्ण और परिपक्व न हो तो सद्गुरु को सामान्य मानव समझने की भूल होती रहती है। श्रद्धा और समर्पण की सघनता में ही यह रहस्य समझ में आता है कि गुरुदेव मूर्त महेश्वर हैं। गुरु चेतना को नमन ही ब्राह्मी चेतना को नमन है।

पूर्वोक्त मंत्रों में सद्गुरु के अनुरागी शिष्यों को इसकी अनुभूति कराने की चेष्टा की गई है। इसमें यह बोध कराया गया है कि गुरुतत्त्व, परमात्म तत्त्व एवं सृष्टि तत्त्व अलग-अलग नहीं हैं। जिस परम सत्य के कारण जगत सत्य भासता है, वह गुरुवर के सिवा अन्य कुछ भी नहीं हैं। जिनके आनन्द से जगत आनन्द से आपूरित होता है- वे सच्चिदानन्द गुरुदेव ही हैं। जिनके प्रेम के कारण सभी में प्रीति की अनुभूति होती है, वे भावमय भगवान् सद्गुरु ही हैं। जिनकी चेतना से विश्व चेतन है! जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ जिनसे प्रकाशित हैं, सद्गुरु ही वह परम चेतन तत्त्व हैं। जिनके द्वारा ज्ञान मिलने से समस्त भेद दृष्टि समाप्त हो जाती है, वे सदाशिव गुरुदेव ही हैं। उनकी कृपा से ही ब्रह्मतत्त्व की अनुभूति होती है। ऐसे सर्वव्यापी, सर्वज्ञ, परम करुणामय सद्गुरु को छोड़कर भला और किसे नमन करें।

गुरु नमन की यह महिमा अनन्त और अपरिमित है। इसका विस्तार असीम है। इसके अगले क्रम को गुरुगीता के महामंत्रों में प्रकट करते हुए भगवान् महेश्वर जगन्माता भवानी से कहते हैं-

यस्य कारणरूपस्य कार्यरूपेण भाति यत्।
कार्यकारणरूपाय तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ४१॥
नानारूपम् इदं सर्वं न केनाप्यस्ति भिन्नता।
कार्यकारणता चैव तस्मै श्रीगुरवे नमः॥ ४२॥
यदङ्घ्रिकमलद्वंद्वं द्वंद्वतापनिवारकम्।
तारकं सर्वदाऽऽपद्भ्यः श्रीगुरुं प्रणमाम्यहम्॥ ४३॥
शिवे क्रुद्धे गुरुस्त्राता गुरौ क्रुद्धे शिवो न हि।
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन श्रीगुरुं शरणं व्रजेत्॥ ४४॥
वन्दे गुरुपदद्वन्द्वं वाङ्मनश्चित्तगोचरम्।
श्वेतरक्तप्रभाभिन्नं शिवशक्त्यात्मकं परम्॥ ४५॥

सद्‌गुरु नमन के इन महामंत्रों में जीवन साधना का सार समाहित है। भगवान् सदाशिव की वाणी शिष्यों को बोध कराती है- कि ब्राह्मी चेतना से एकरूप गुरुदेव इस जगत् का परम कारण होने के साथ ही कारण रूप यह जगत् भी हैं। वे ही महाबीज हैं और वे ही महावट हैं। ऐसे कार्य-कारण रूपी सद्‌गुरु को नमन है॥४१॥ इस संसार में यद्यपि ऊपरी तौर पर सब जगह भेद व भिन्नता दिखाई देती है। परन्तु तात्त्विक दृष्टि से ऐसा नहीं है। इस दृष्टि से तो कार्य-कारण की परमात्म चेतना के रूप में गुरुदेव ही सर्वत्र व्याप्त हैं। ऐसे सर्वव्यापी सद्‌गुरु को नमन है॥४२॥ जिनके दोनों चरण कमल शिष्य के जीवन में आने वाले सभी द्वन्द्वों, सर्व विधि तापों और सब तरह की आपदाओं का निवारण करते हैं। उन श्री गुरु को मैं प्रणाम करता हूँ!॥४३॥ भगवान् भोलेनाथ स्वयं कहते हैं कि यदि शिव स्वयं क्रुद्ध हो जाएँ तो भी शिष्य का त्राण करने में सद्‌गुरु समर्थ हैं। परन्तु यदि गुरुदेव रूष्ट हो गए तो महारुद्र शिव भी उसकी रक्षा नहीं कर सकते। इसलिए सब

तरह की कोशिश करके श्री गुरु की शरण में जाना चाहिए।।४४।। श्री गुरु के चरणों की महिमा मन-वाणी, चित्त व इन्द्रिय ज्ञान से परे है। श्वेत-अरुण प्रभा युक्त गुरु चरण कमल परम शिव व परा शक्ति का सहज वास स्थान हैं उनकी मैं बार-बार वन्दना करता हूँ।।४५।।

गुरु नमन के इन महामंत्रों के भाव को सही ढंग से वही समझ सकते हैं, जिन्हें इस सत्य की अनुभूति हो चुकी है कि सद्गुरु चेतना एवं ब्राह्मी चेतना सर्वथा एक हैं। अपने गुरुदेव कोई और नहीं स्वयं देहधारी ब्रह्म हैं। इन महामंत्रों की व्याख्या को और अधिक सुस्पष्ट ढंग से समझने केलिए एक सत्य घटना का उल्लेख करना सम्भवतः अधिक उपयुक्त होगा। यह घटना बंगाल के महान् सन्त विजयकृष्ण गोस्वामी एवं उनके शिष्य कुलदानन्द ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में है। महात्मा विजयकृष्ण गोस्वामी योग विभूतियों से सम्पन्न सिद्ध योगी थे। उनका सन्त जीवन अनेकों सन्तों व महान् देश भक्तों के लिए प्रेरक रहा है। उनके शिष्यों ने न केवल साधना जीवन में आश्चर्यजनक उपलब्धियाँ अर्जित की, अपितु कइयों ने राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए बढ़-चढ़कर भागीदारी निभायी। इन शिष्यों में कुलदानन्द ब्रह्मचारी उनके ऐसे शिष्य थे, जिन्होंने अपने तप और योग साधना से न केवल स्वयं को बल्कि अनेकों के जीवन को प्रकाशित किया।

कुलदानन्द ब्रह्मचारी ने अपनी डायरी में कई रहस्यमय साधना प्रसंग की चर्चा की है। ऐसी एक चर्चा उनके जीवन के उस कालखण्ड की है, जब वह गहरे साधना संघर्ष से गुजर रहे थे। काम वासना का प्रबल वेग उनके अन्तःकरण में रह-रहकर उद्वेग करता था। समझ में नहीं आता क्या करें? कैसे निबटे इस काम रूपी महाअसुर से। हारकर उन्होंने अपनी विकलता गुरुदेव से निवेदित की। अपनी व्यथा कहते हुए वह बिलख-बिलख कर रो पड़े। उनके आँसुओं से महात्मा विजय कृष्ण गोस्वमी के चरण भीग गए। उनकी इस विह्वलता से द्रवित होकर गोस्वामी जी ने उठाकर ढांढस बंधाया और कहा- पुत्र!

तुम रोते क्यों हो ? गुरु के रहते उसके शिष्य को असहाय अनुभव करने की कोई जरूरत नहीं है। अपने सद्गुरु के रहते हुए यदि कोई शिष्य विवश अनुभव करता है तो उसके दो ही कारण हो सकते हैं, या तो उसका शिष्यत्व सच्चा नहीं है अथवा उसके गुरु की चेतना अभी भगवान् से एकाकार नहीं हुई है।

अपनी बातों को कहते हुए विजयकृष्ण गोस्वामी उठ कर खड़े हुए और दीवार पर लगी अलमारी से अपनी एक छोटी फोटो कुलदानन्द को थमाई। और बोले- बेटा! तुम शिव भाव से इस फोटो की नित्य पूजा करना। तुम्हें अपने जीवन की आन्तरिक व बाह्य आपदाओं से सुरक्षा मिलेगी। फोटो लेकर कुलदानन्द जी अपने निवास स्थान पर आ गए। और नित्य प्रति गुरुदेव के चित्र का पूजन करते हुए अपनी साधना में विलीन हो गए। साधना काल में ध्यान के पलों में एक दिन उन्हें अन्तर्दर्शन हुआ कि सुषुम्ना नाड़ी में अपनी चेतना के एक अंश को प्रविष्ट कर गुरुदेव उनकी चेतना को ऊपर उठा रहे हैं। गुरु कृपा से उसी क्षण उनकी अन्तर्चेतना काम विकार से मुक्त हो गई। वह लिखते हैं कि फिर कभी उन्हें काम का प्रकोप नहीं हुआ।

इन्हीं दिनों उन्हें एक अन्य अनुभव भी हुआ। एक दिन साधना करते समय उनके कमरे की छत गिर पड़ी। जिस ढंग से छत गिरी उस तरह उन्हें दबकर मर जाना चाहिए था। परन्तु आश्चर्यजनक ढंग से जिस स्थान पर बैठे थे, उस स्थान पर छत का मलबा अधर में ही लटका रह गया। गुरु कृपा को अनुभव करते हुए पहले वह उठे, फिर गुरुदेव के चित्र को उठाया, और बाहर आ गए। इसी के साथ पूरी छत भी गिर गयी। साथ ही ध्यान आया उन्हें गुरुदेव का कथन जो उन्होंने फोटो देते हुए कहा था- पुत्र! मेरा यह चित्र तुम्हें आन्तरिक व बाह्य विपत्तियों से बचाएगा। और सचमुच ऐसा ही हुआ। गुरु कृपा से शिष्य को सब कुछ अनायास ही सुलभ हो जाता है।



गुरु से बड़ा तीनों लोकों में और कोई नहीं

गुरुगीता में गुरुतत्त्व की अनुभूति समायी है। सद्गुरु भक्तों के लिए सहज-सुलभ यह अनुभूति बुद्धिप्रवणजनों के लिए परम दुर्लभ है। ऐसे लोग अपनी तर्क-बुद्धि से देहधारी गुरुसत्ता को सामान्य मानव समझने की मूल करते रहते हैं। वे सोचते हैं हमारी ही तरह दिखने वाला यह व्यक्ति हमसे इतना अलग और असाधारण किस भाँतिक हो सकता है। जो ठीक हमारी तरह खाता-पीता व सोता है, वह भला किस तरह ईश्वरीय तत्त्व की सघन प्रतिमूर्ति हो सकता है। अनेकों शंकाएँ-कुशंकाएँ उनके मन-अन्तःकरण को घेरे रहती हैं। अनगिनत संदेह-भ्रम उन्हें परेशान करते रहते हं। मूढ़ताओं का यह कुहासा इतना गहरा होता है कि सूर्य की भाँति प्रकाशित सदगुरु चेतना उन्हें नजर ही नहीं आती। अपनी तर्क प्रवण बुद्धि में उलझकर वे यह भूल जाते हैं कि गुरुदेव तो तर्क से अतीत है। वे महामहेश्वर गुरुदेव बुद्धिगम्य नहीं भावगम्य हैं।

उन भावगम्य भगवान को तर्क से नहीं श्रद्धा से समझा जा सकता है। उन्हें नमन एवं समर्पण से ही इस सत्य का बोध होता है कि वे कौन हैं? गुरु भक्ति कथा की पिछली पंक्तियों में इसी तत्त्व की अनुभूति कराने की चेष्टा की गई है। इसमें यह ज्ञान कराया गया है कि गुरुदेव ब्राह्मी चेतना से सर्वथा अभिन्न होने के कारण इन जगत् के परम स्रोत हैं। यह जगत् भी उन्हीं का विराट् रूप है। वे एक साथ महाबीज भी है और महावट् भी। ऊपरी तौर पर हर कहीं-सब कहीं कितना भी भेद क्यों न दिखाई दे, पर गुरुदेव की परम पावन चेतना सभी कुछ अभिन्न और अभेद है। उनके चरण कमलों में आश्रय पाने से शिष्यों के सभी दुःख, द्वन्द्व और तापों का निवारण हो जाता है। उनका प्रभाव और प्रताप कुछ ऐसा है कि महारुद्र यदि क्रुद्ध हो जायँ तो गुरु कृपा

से शिष्य का त्राण हो जाता है, परन्तु सद्गुरु के रूष्ट होने से स्वयं महारुद्र भी रक्षा नहीं कर पाते हैं। सद्गुरु चरण युगल शिव-शक्ति का ही रूप हैं। उनकी बार- बार वन्दना करने से शिष्यों का सब भाँति कल्याण होता है।

गुरु नमन की यह महिमा गुरुतत्त्व के विस्तार की ही भाँति असीम और अनन्त है। इसके अगले क्रम को गुरुगीता के महामंत्रों में प्रकट करते हुए भगवान् सदाशिव -पराम्बा भवानी से कहते हैं-

गुकारं च गुणातीतं रुकारं रूपवर्जितम्।
गुणातीत स्वरूपं च यो दद्यात् स गुरुः स्मृतः॥ ४६॥
अ-त्रिनेत्रः सर्वसाक्षी अ-चतुबहिरच्युतः।
अ-चतुर्वदनो ब्रह्मा श्री गुरुः कथितः प्रिये।।४७॥
अयं मयाञ्जलिर्बद्धो दयासागरवृद्धये।
यद् अनुग्रहतो जन्तुश्चित्र संसार मुक्ति माक् ॥ ४८॥
श्रीगुरोः परमं रूपं विवेक चक्षुषोऽमृतम्।
मन्दभाग्या न पश्यन्ति अन्धाः सूर्योदयं तथा॥ ४९॥
श्रीनाथ चरणद्वन्द्वं यस्यां दिशि विराजते।
तस्यै दिशेनमस्कुर्याद् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये॥ ५०॥

गुरुतत्त्व की अनुभूति कराने वाले इन महामंत्रों में आध्यात्मिक जीवन का निष्कर्ष प्रकट है। भगवान् महेश्वर की वाणी शिष्यों के समक्ष इस सत्य को उजागर करती है कि गुरुदेव साकार होते हुए भी निराकार हैं। 'गुरु' शब्द का पहला अक्षर 'गु' इस सत्य का बोध कराता है कि त्रिगुणमय कलेवर को धारण करने वाले गुरुदेव सर्वथा गुणातीत है। दूसरे अक्षर 'रु' में यह सत्य निहित है कि शिष्यों के लिए रूप वाले होते हुए भी गुरुदेव भगवान् रूपातीत है। यानि कि गुरुवर की चेतना वास्तव में निर्गुण व निराकार है। शिष्य को आत्मा स्वरूप प्रदान करने वाले गुरुदेव की महिमा अनन्त है॥ ४६॥ भगवान् सदाशिव के वचन हैं कि तीन आँखों वाले न होने पर भी गुरुदेव साक्षात् शिव

हैं। चार भुजाएँ न होने पर भी वे सर्वव्यापी विष्णु हैं। चार मुख न होने पर भी वे सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं॥ ४७॥ ऐसे दयासागर गुरुदेव को मैं हाथ जोड़कर प्रणाम करता हूँ। उनकी कृपा से ही जीवों को भेद बुद्धि वाले संसार से मुक्ति मिलती है॥ ४८॥ श्री सद्गुरु का यह परम रूप उनसे विवेक चक्षु मिलने पर ही दृश्य होता है। तभी उनके अमृत तुल्य रूप का स्पर्श मिलता है। इसके अभाव में जिस तरह अन्धा व्यक्ति सूर्योदय के दृश्य को नहीं देख पाता ॥ ४९॥ उन परम स्थायी सद्गुरु के चरणद्वय जिस दिशा में भी विराजते हैं उस दिशा में प्रतिदिन नमस्कार करने से शिष्यों का-भक्तों का परम कल्याण होता है॥ ५०॥

गुरुगीता में वर्णित यह गुरुतत्व बुद्धिगम्य ही नहीं ध्यानगम्य व भक्तिगम्य भी है। जिनकी अंतर्चेतना ने भक्ति का स्वाद चखा है, जो ध्यान की गहराइयों में अंतर्लीन हुए हैं, उन्हें यह सत्य सहज ही समझ में आ जाता है। इस तथ्य को श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य लाटू महाराज स्वामी अद्भुतानन्द के उदाहरण से समझा जा सकता है। श्री ठाकुर एवं उनके शिष्य समुदाय की जीवन कथा को पढ़ने वाले सभी जानते हैं कि लाटू महाराज अनपढ़ ही थे। गुरुभक्ति ही उनकी साधना थी। भक्त समुदाय में बहुप्रचलित श्रीरामकृष्ण देव की समाधिलीन फोटो जब बन कर आयी तो श्री ठाकुर ने स्वयं उसे प्रणाम किया। लाटू महाराज बोले - ठाकुर यह क्या, अपनी ही फोटो को प्रणाम। इस पर ठाकुर हँसे और बोले - "नहीं रे! मेरा यह प्रणाम इस हाड़-मास की देह वाले चित्र को नहीं है, यह तो उस परम् वन्दनीय गुरु चेतना को प्रणाम है, जो इस फोटो की भाव मुद्रा से छलक रही है।"

श्री ठाकुर के इस कथन ने लाटू महाराज को भक्ति के महाभाव में निमग्न कर दिया। इन क्षणों में उन्हें परमहंस का एक और वाक्य याद आया - 'जे राम जे कृष्ण सेई रामकृष्ण' अर्थात् जो राम, जो कृष्ण, वही रामकृष्ण। पर इन सब बातों का अनुभव कैसे किया जाए? इस जिज्ञासा के समाधान में श्री ठाकुर ने कहा - "भक्ति से,

ज्ञान से। इसी से तेरा सब कुछ हो जाएगा। अपने सद्गुरु के वचनों को हृदय में धारण कर।'' लाटू महाराज गुरुभक्ति को प्रगाढ़ करते हुए ध्यान साधना में जुट गए।

उनकी यह साधना निरंतर अविराम तीव्र से तीव्रतर एवं तीव्रतम होती गई। इस साधनावस्था में एक दिन उन्होंने देखा कि ठाकुर किसी दिव्य लोक में हैं। बड़ा ही प्रकाश और प्रभापूर्ण उपस्थिति है उनकी। स्वर्ग के देवगण, विभिन्न ग्रहों के स्वामी रवि, शनि, मंगल आदि उनकी स्तुति कर रहे हैं। ध्यान के इन्हीं क्षणों में लाटू महाराज ने देखा कि श्री ठाकुर की परा चेतना ही विष्णु-ब्रह्मा एवं शिव में समायी है। माँ महाकाली भी उनमें एकाकार हैं। ध्यान में एक के बाद अनेक दृष्य बदले और लीलामय ठाकुर के दिव्य चेतना के अनेक रूपों का साक्षात्कार होता गया। अपनी इस समाधि में लाटू महाराज कब तक खोए रहे, पता नहीं चला।

समाधि का समापन होने पर लाटू महाराज पंचवटी से सीधे श्री ठाकुर के कमरे में आए और उन्हें वह सब कह सुनाया जो उन्होंने अनुभव किया था। अपने अनुगत शिष्य की यह अनुभूति सुनकर परम कृपालु परमहंस देव हँसते हुए बोले - ''अच्छा रे! तू बड़ा भाग्यवान है, माँ ने तूझे सब कुछ सच-सच दिखा दिया। जो तूने देखा वह सब ठीक है।'' फिर थोड़ा गंभीर होकर उन्होंने कहा - ''शिष्य के लिए गुरु से भिन्न तीनों लोकों में और कुछ नहीं है। जो इसे जान लेता है, उसे सब कुछ अपने-आप मिल जाता है।'' श्री ठाकुर के यह वचन प्रत्येक शिष्य के लिए महामंत्र है।



गुरु कृपा ने बनाया महासिद्ध

गुरुगीता के महामन्त्रों में अध्यात्मविद्या के गूढ़तम रहस्य संजोये हैं। योग, तन्त्र एवं वेदान्त आदि सभी तरह की साधनाओं का सार इनमें है। महाकठिन साधनाएँ इन महामंत्रों के आश्रय में अति सुगम हो जाती हैं। ऐसा होते हुए भी सभी लोग इस सत्य को समझ नहीं पाते हैं। जिनके पास गुरुभक्ति से मिली दिव्य दृष्टि है, उन्हीं की अन्तश्चेतना में यह तत्त्व उजागर होता है। गुरुदेव भगवान् के प्रति श्रद्धा अति गहन हो तो फिर साधक को इस बात की प्रत्यक्ष अनुभूति हो जाती है कि विश्व-ब्रह्माण्ड में यदि कहीं कुछ भी है तो वह अपने गुरुदेव में है। इन्हीं के आश्रय में सभी तरह की साधनाएँ सिद्धिदायी होती हैं।

गुरु श्रद्धा की तत्त्व कथा के उपरोक्त मंत्र में यह ज्ञान कराया ााया है कि गुरुदेव साकार होते हुए भी निराकार हैं। वे परात्पर प्रभु त्रेगुणमय कलेवर को धारण करके भी सर्वथा गुणातीत हैं। अपने वास्तविक रूप में निर्गुण व निराकार गुरुदेव की महिमा अनन्त हैं। वे ही सदाशिव सर्वव्यापी विष्णु एवं सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा हैं। ऐसे दयामय गुरुदेव को प्रणाम करने से जीवों को संसार से मुक्ति मिलती है। इस सत्य को विरले विवेकवान ही समझ पाते हैं। विवेक न होने पर यह सच्चाई प्रकट होते हुए भी समझ में नहीं आती। परम कृपालु सद्गुरु के चरण जिस दिशा में विराजते हैं, उधर भक्तिपूर्णक प्रणाम करने से शिष्य का सर्वविधि कल्याण होता है।

गुरुदेव भगवान् के महिमामय स्वरूप के अन्य रहस्यमय आयामों को प्रकट करते हुए भगवान् सदाशिव आदिमाता जगदम्बा से कहते हैं-

तस्यै दिशे सततमञ्जलिरेष आर्ये
प्रक्षिप्यते मुखरितो मधुपैर्बुधैश्च।

जागर्ति यत्र भगवान् गुरुचक्रवर्ती
विश्वोदयप्रलयनाटकनित्यसाक्षी॥ ५१॥
श्रीनाथादिगुरुत्रयं गणपतिं पीठत्रयं भैरवं
सिद्धौघं बटुकत्रयं पदयुगं दूतीक्रमं मण्डलम्।
विरान् द्व्यष्ट-चतुष्क-षष्टि-नवकं-वीरावलीपञ्चकं
श्रीमन्मालिनिमंत्रराजसहितं वन्दे गुरोर्मण्डलम्॥५२॥

गुरुतत्त्व के रहस्य को प्रकट करने वाले इन महामंत्रों में अनेक तरह की साधनाओं के रहस्यों का गूढ़ संकेतों में वर्णन है। भगवान् भोलेनाथ की वाणी शिष्यों के समक्ष इस रहस्य को प्रकट करती है, कि गुरुदेव भगवान् में साधना, साध्य एवं सिद्धि के सारे मर्म समाए हैं। गुरुदेव सृष्टि में चल रहे उत्पत्ति एवं प्रलय रूप नाटक के नित्य साक्षी हैं। वे ही सम्पूर्ण सृष्टि के चक्रवर्ती स्वामी हैं। ऐसे गुरुदेव भगवान् जिस दिशा में भी विराज रहे हों, उसी दिशा में विद्वान् शिष्य को मन्त्रोच्चार पूर्वक सुगन्धित पुष्पों की अञ्जलि समर्पित करनी चाहिए॥ ५१॥

श्री गुरुदेव ही परमगुरु एवं परात्पर गुरु हैं। उनमें तीनों नाथ गुरु आदिनाथ, मत्स्येन्द्रनाथ एवं गोरक्षनाथ समाये हैं। उन्हीं में भगवान् गणपति का वास है। उन परम प्रभु में तंत्र साधना के तीनों रहस्य मयपीठ-कामरूप, पूर्णगिरि एवं जालंधर पीठ स्थित हैं। मन्मथ आदि अष्ट भैरव, सभी महासिद्धों के समूह, तंत्र साधना में सर्वोच्च कहा जाने वाला विरंचि चक्र उन्हीं में है। स्कन्दादि बटुकत्रय, योन्याम्बादि दूतीमण्डल, अग्निमण्डल, सूर्यमण्डल, सोममण्डल आदि मण्डल, प्रकाश व विमर्श के युगल पद के रहस्य उन्हीं में हैं। दशवीर, चौसठ योगिनियाँ, नवमुद्राएँ, पंचवीर तथा अ से क्ष तक सभी मातृकाएँ एवं मालिनीयंत्र गुरुदेव के चेतनामण्डल में ही स्थित हैं। सभी तत्त्वों से युक्त गुरु मण्डल को मेरा बारम्बार प्रणाम है।

गुरुगीता में बताया गया यह सत्य किसी भी तरह से बुद्धिगम्य नहीं है। बुद्धिपरायण, तर्कशील लोग इसे समझ नहीं सकते। किन्तु? क्यों? और कैसे? के प्रश्न कुहांसे से इसे अनुभव नहीं किया जा सकता। इसे वही जान सकते हैं, समझ सकते हैं और आत्मसात कर सकते हैं- जो साधना की डगर पर काफी दूर तक चल चुके हैं। ऐसे साधना परायण जनों के लिए ही यह गुरुदेव की महिमा नित्य अनुभव की वस्तु बन जाती है। महान् अघोर संत बाबा कीनाराम के साधना अनुभव से इस बात को बहुत ही स्पष्ट रूप से समझा जा सकता है। सिद्धों के, सन्तों के बीच बाबा कीनाराम का नाम बहुत ही आदर से लिया जाता है। बाबा कीनाराम का ज्यादातर समय काशी में बीता। वह अघोर तंत्र के महान् सिद्ध थे। उनके चमत्कारों, अति प्राकृतिक रहस्यों के बारे में ढेरों किंवदंतियाँ कही-सुनी जाती हैं।

बाबा कीनाराम उत्तरप्रदेश-राज्य के गाजीपुर के रहने वाले थे। उनमें जन्म-जन्मान्तर के साधना संस्कार थे। विवेकसार ग्रन्थ में उनकी जीवनकथा विस्तार से वर्णित है। इसमें लिखा है कि जब वह जूनागढ़ के परम सिद्धपीठ गिरनार गए तो उन्हें स्वयं भगवान् दत्तात्रेय ने दर्शन दिए। और उन्होंने कीनाराम को एक कुबड़ी देते हुए कहा- जहाँ यह कुबड़ी तुमसे कोई ले ले, वहीं तुम स्थायी रूप से रहना तथा उन्हीं को अपना अघोर गुरु बनाना। इसी के साथ भगवान् दत्तात्रेय ने उन्हें गुरुगीता में वर्णित उपरोक्त महामंत्रों के रहस्य को समझाते हुए उनको गुरु महिमा के बारे में बताया।

कीनाराम जब काशी पहुँचे तो वहाँ हरिश्चन्द्र घाट पर बाबा कालूराम से उनकी भेंट हुई। पहली भेंट में कालूराम ने उनकी तरह-तरह से अनेकों परीक्षाएँ लीं। बड़ी कठिन और रहस्यमयी परीक्षाओं के बाद वह उन्हें अपना शिष्य बनाने के लिए तैयार हो गए। शिष्य बनने के बाद तंत्र साधना का एक परम दुर्लभ एवं अति रहस्यमय अनुष्ठान किया जाना था। इस अनुष्ठान के लिए कई तरह की सामग्री

आवश्यक थी। जिन्हें साधना का थोड़ा सा भी ज्ञान है- वे जानते हैं कि तंत्र साधना में उपयोग की जाने वाली सामग्री कितनी दुर्लभ हुआ करती है। प्रश्न था- कहाँ से और कैसे लायी जाय। तंत्र अनुष्ठान की इस शृंखला में अनेक देवों, योगिनियों को संतुष्ट करना था। एक साथ यह सब कैसे हो?

इन प्रश्नों ने बाबा कीनाराम को आकुल कर दिया। शिष्य की चिन्ता से शिष्य वत्सल बाबा कालूराम द्रवित हो उठे। उन्होंने कहा- चिन्ता किस बात की रे! मैं हूँ न, तू मेरी ओर देख, मुझ में देख! उनके इस तरह कहने पर बाबा कीनाराम ने अपने गुरु की ओर देखा। आश्चर्य! परमाश्चर्य!! तंत्र साधना की सभी अधिष्ठात्री देव शक्तियाँ महासिद्ध कालूराम में विद्यमान थीं। सभी तंत्रपीठ उनमें समाहित थे। सद्गुरु चेतना में तंत्र साधना के समस्त तत्त्व दिखाई दे रहे थे। शिष्यवत्सल बाबा कालूराम की यह अद्भुत कृपा देखकर कीनाराम भक्ति विह्वल हो गए। और 'गुरुकृपा ही केवलम्' कहते हुए उनके चरणों में गिर पड़े। अपने सद्गुरु के पूजन से ही उन्हें तंत्र की समस्त शक्तियाँ, सारी सिद्धियाँ मिल गयीं। गुरु कृपा ने उन्हें अघोरतंत्र का महासिद्ध बना दिया। सद्गुरु पूजन में सबका यजन है। सभी शिष्य साधक इस साधना रहस्य को भलीप्रकार जान लें।



गुरुकृपा से असंभव भी संभव है

गुरुगीता गुरुभक्ति का सुमधुर गायन है। सद्गुरु भक्ति से साधक को सब कुछ सहज सुलभ हो जाता है। गुरु प्रेम की छांव में रहने वाला शिष्य जीवन के सभी विघ्नों-बाधाओं से अनायास ही सुरक्षित-संरक्षित रहता है। धन्य हैं वे लोग जिनके अन्तःकरण में गुरु भक्ति का उदय हुआ है। क्योंकि इसके उदय होने से साधक का अन्तःकरण सदा ही दिव्य आलोक से आलोकित रहता है। अध्यात्मविद्या की सभी रहस्यात्मक प्रक्रियाएँ अपने आप ही उसके अन्तःकरण में स्फुरित होती रहती हैं। अनेकों अलौकिक अनुभव उसे हर क्षण धन्य करते रहते हैं। इन पंक्तियों में जो कुछ कहा जा रहा है, वह केवल वैचारिक-तार्किक यथार्थ भर नहीं है, बल्कि समर्पण पथ पर चल पड़े साधकों के अनुभवों का सार है। इसे प्रत्येक साधक आज, अभी और इन्हीं क्षणों में अनुभव कर सकता है।

गुरु भक्ति की इस तत्त्व कथा की पिछली कड़ी में परम पूज्य गुरुदेव के इसी चैतन्य तत्त्व की अनुभूति कराने का प्रयास किया गया था। गुरुदेव सृष्टि में चल रहे उत्पत्ति एवं प्रलय रूप नाटक के नित्य साक्षी हैं। वे प्रभु जिस भी दिशा में विराज रहे हों, उसी दिशा में शिष्य को भक्तिपूर्वक पुष्पाञ्जलि अर्पित करना चाहिए। श्री गुरुदेव ही परात्पर एवं परम गुरु हैं। तीनों नाथ गुरु उनमें समाए हैं। उन्हीं में गणपति का वास है। तन्त्र साधना के तीनों रहस्यमय पीठ उन्हीं में है। अष्ट भैरव, विरंचि चक्र, सभी मण्डल, पंचवीर, नवमुद्राएँ, चौसठ योगिनियां, सभी मातृकाएँ उन गुरुदेव के ही चेतना मण्डल में अवस्थित हैं। साधना की जितनी भी प्रक्रियाएँ हैं, उन सभी का कोई भी महत्त्वपूर्ण तत्त्व उनसे अलग नहीं है। सभी कुछ उन्हीं शिष्यवत्सल प्रभु में समर्पित है।

गुरुदेव भगवान् के इस अध्यात्ममय स्वरूप को स्पष्ट करने के बाद भगवान् सदाशिव साधकों को निर्देश देते हैं- कि अपने परम पूज्य गुरुदेव का आश्रय छोड़कर अन्य कहीं भी न भटको। वेदान्त एवं तन्त्र की किन्हीं रहस्यमय उलझनों में मत उलझो। सद्गुरु शरण में, सद्गुरु समर्पण में सब कुछ है। इस तथ्य को और भी अधिक स्पष्ट स्वरों में बताते हुए देवाधिदेव महादेव आदिमाता पार्वती से कहते हैं-

अभ्यस्तैः सकलैः सुदीर्घमनिलैः व्याधिप्रदैर्दुष्करैः
प्रणायाम शतैरनेककरणै दुःखात्मकैर्दुजयैः।
यस्मिन्नभ्युदिते विनश्यति बली वायुः स्वयं तत्क्षणात्
प्राप्तुं तत्सहजं स्वभावमनिशं सेवध्वमेकं गुरुम्॥ ५३॥
स्वदेशिकस्यैव शरीर चिन्तनं
भवेदनन्तस्य शिवस्य चिन्तनं।
स्वदेशिकस्यैव च नाम कीर्तनं
भवेदनन्तस्य शिवस्य कीर्तनं॥ ५४॥

गुरुदेव की आध्यात्मिक चेतना के रहस्य को प्रकट करने वाले ये मंत्र अपने फलितार्थ में रहस्यमय एवं गूढ़ होते हुए भी प्रक्रिया में अति सरल हैं। देवाधिदेव महादेव स्कन्दमाता जगदम्बा से कहते हैं, देवी! दुःख देने वाले, रोग उत्पन्न करने वाले, इन्द्रियों को पीड़ा पहुँचाने वाले, दुर्जय दीर्घश्वास की क्रिया रूपी सैकड़ों की संख्या में प्राणायाम के अभ्यास का भला क्या सुफल है? अरे! जिनकी चेतना के अन्तःकरण में उदय होने मात्र से बलवान वायु तत्क्षण स्वयं प्रशमित हो जाती है। ऐसे गुरुदेव की निरन्तर सेवा करनी चाहिए। क्योंकि इस गुरुसेवा से सहज ही आत्मलाभ हो जाता है॥ ५३॥ अपने गुरुदेव के स्वरूप का थोड़ा सा भी चिन्तन भगवान् शिव के स्वरूप के अनन्त चिन्तन के समान है। गुरुदेव के नाम का थोड़ा सा भी कीर्तन भगवान् शिव के अनन्त नाम कीर्तन के बराबर है॥ ५४॥

गुरुगीता के इन मन्त्रों के अर्थ को अधिक स्पष्ट रीति से समझने के लिए गुरुभक्ति साधना की एक सत्यकथा साधकों के समक्ष प्रस्तुत है। यह कथा आदि गुरु शंकराचार्य एवं उनके शिष्य तोटकाचार्य से सम्बन्धित है। आचार्य शंकर उन दिनों बद्रीनाथ धाम में वेदान्त दर्शन पर अपने प्रसिद्ध शारीरक भाष्य को लिख रहे थे। वेदान्त दर्शन यानि कि ब्रह्मसूत्र पर यह सुप्रसिद्ध भाष्य है। इसकी एक-एक पंक्ति में वेदान्त साधना एवं ब्रह्मज्ञान के अद्‍भुत रहस्य संजोये हैं। हिमालय के शुभ्र धवल शिखरों की छांव में भगवान् नारायण की पावन तपस्थली में उन दिनों आचार्य की लेखन पयस्विनी प्रवाहित हो रही थी। आचार्य का प्रायः सम्पूर्ण दिन अपने एकान्त चिन्तन एवं लेखन में बीतता था। दिन के अन्तिम प्रहर में सन्ध्या से पूर्व आचार्य अपने भाष्य के लिखित अंशों को शिष्यों को पढ़ाते थे।

आदिगुरु भगवान् शंकराचार्य के शिष्यों में पद्मपाद, सुरेश्वर आदि परम विद्वान शिष्य थे। विद्वान शिष्यों की इस मण्डली में एक मूढ़मति मन्दबुद्धि, बेपढ़ा-लिखा एक बालक भी था। यह बालक बिना पढ़ा-लिखा भले ही था, उसकी बुद्धि भले ही तीव्र न थी, परन्तु उसका हृदय आचार्य के प्रति भक्ति से भरा था। आचार्य उसके लिए सर्वस्व थे। आचार्य की सेवा ही उसका जीवन था। इसके अलावा उसे और कुछ भी न आता था। उसकी मूढ़ता और मन्दबुद्धि पर कभी-कभी आचार्य के अन्य शिष्य उपहास भी कर लेते थे। पर इससे उसे कोई फर्क न पड़ता था। वह तो बस गुरुगत प्राण था। गुरुसेवा के अलावा उसे और कोई चाह न थी। फिर भी आचार्य न जाने क्यों उसे अपनी सायं कक्षा में बुलाना न भूलते थे।

एक दिन आचार्य की नियमित कक्षा का समय हो गया था। पद्मपादाचार्य, सुरेश्वराचार्य, हस्तामलकाचार्य आदि सभी भगवान् शंकराचार्य के श्रीचरणों के समीप आ जुटे थे। किन्तु आचार्य का वह सेवक शिष्य दिखाई नहीं दे रहा था। आचार्य को उसी की प्रतीक्षा थी।

वह रह-रहकर इधर-उधर देख लेते। कक्षा में विलम्ब हो रहा था। उपस्थित शिष्यों में से प्रत्येक को प्रतीक्षा असह्य हो रही थी। सभी को भारी उत्सुकता थी कि उनके गुरुदेव ने आज नया क्या लिखा है। यह उत्सुकता अपने चरम बिन्दु पर जा पहुँची। पर कोई कुछ कह नहीं पा रहा था। अन्त में पद्मपाद ने साहस किया, पाठ प्रारम्भ करने की कृपा करें भगवन्। वत्स! मुझे अपने एक शिष्य की प्रतीक्षा है। आचार्य ने उत्तर दिया। पर वह तो निरा विमूढ़ है भगवन्। उसका आना न आना दोनों ही एक जैसे हैं। पद्मपाद के स्वरों में विनम्रता होते हुए भी एक खीझ थी।

आचार्य भगवत्पादशंकर से यह बात छुपी न रही। उन्होंने यह जान लिया कि उनके इन विद्वान शिष्यों को अपनी विद्वता का कुछ अभिमान हो आया है। शिष्यों का गर्वहरण करने वाले आचार्य शंकर मुस्कराए और एक क्षण के लिए ध्यानस्थ हो गए। उनका वह शिष्य, जिसकी उन्हें प्रतीक्षा थी, उन्हीं के वस्त्र धोने के लिए गया था। यह उसका नित्य का कार्य था। किन्तु आज अचानक उसके अन्तःकरण में समस्त विद्याएँ एक साथ प्रकाशित हो गयी। वह गुरुकृपा की इस अनुभूति पर कृतकृत्य हो गया। अपने कांधे पर गुरुदेव के धुले वस्त्रों को लिए हाथ जोड़े तोटक छन्दों में आचार्य की स्तुति करते हुए वह चला आ रहा था।

विदिताखिलशास्त्र सुधा जलधे,
महितोपनिषत्कथितार्थनिधे।
हृदये कमले विमलं चरणं,
भवशंकरदेशिकमम् शरणं॥
करूणावरूणालय पालयमाम्,
भवसागरदुःखविदून हृदम्।
रचयाखिल दर्शन तत्त्वविदं,
भव शंकरदेशिकमम् शरणं॥

तोटक छन्द में स्व स्फुरित इस गुरु वन्दना को सुनकर वहाँ उपस्थित सभी अवाक् रह गए। उन्हें भारी अचरज तो तब हुआ, जब उसे आचार्य ने आदेश दिया- वत्स! आज मेरे स्थान पर तुम इन्हें ब्रह्मसूत्र पर मेरे मन्तव्य को समझाओ। इतना ही नहीं, तुम इनके सम्मुख उन सूत्रों की व्याख्या भी करो, जिन पर अभी मैंने भाष्य नहीं लिखा है। तोटकाचार्य- जो आज्ञा गुरुदेव! कहकर आचार्य की आज्ञा का पालन कर दिखाया। तोटकाचार्य की अनायास उदित हुई प्रखर प्रतिभा को देखकर सभी को इस सत्य की अनुभूति हो गया कि तोटकाचार्य पर गुरु-कृपा बरस गयी है। त्राहिमाम गुरुदेव! कहते हुए सभी शिष्य आचार्य के चरणों में गिर पड़े। आचार्य ने उन्हें निराभिमानी बनने की सलाह दी। सभी अनुभव कर रहे थे कि गुरु-कृपा से सब कुछ सम्भव है।



गुरुचरणों की रज कराए भवसागर को पार

गुरुगीता का गायन शिष्यों क अन्तर्मन को गुरुभक्ति से भिगोता है। उनके हृदय में सद्गुरु समर्पण के स्वर फूटते हैं। मन-प्राण में गुरुवर के लिए अपने सर्वस्व को न्योछावर करने की उमंग जगती है। अन्तर्चेतना में सद्गुरु की चेतना झलकने और छलकने लगती है। जिन्होंने भी गुरुगीता की अनुभूति पायी है- सभी का यही मत है। साधनाएँ अनेक हैं। मत और पथ भी अनगिनत हैं। पर गुरुभक्तों के लिए यही एक मंत्र है अपने गुरुदेव का नाम। उनका एक ही कर्म है, अपने गुरुवर की सेवा। उनमें सदा एक ही भाव विद्यमान रहता है, गुरुदेव के प्रति समर्पण का भाव। जिन्दगी के सारे रिश्ते-नाते, सभी सम्बन्ध गुरुदेव में ही हैं। उनके सिवा त्रिभुवन में न कोई सत्य है और न कोई तथ्य।

उपरोक्त मंत्रों में भगवान् भोलेनाथ के इन वचनों को हमने पढ़ा है कि दु:ख देने वाले, रोग उत्पन्न करने वाले प्राणायाम का भला क्या प्रयोजन है? अरे! गुरुवर की चेतना के अन्त:करण में उदय होने मात्र से बलवान वायु तत्क्षण स्वयं प्रशमित हो जाती है। ऐसे गुरुदेव की निरन्तर सेवा करनी चाहिए। क्योंकि इससे सहज ही आत्मलाभ हो जाता है। अपने गुरुदेव के स्वरूप का थोड़ा सा चिन्तन भी शिव-चिन्तन के समान है। उनके नाम का थोड़ा सा कीर्तन भी शिव-कीर्तन के बराबर है। सद्गुरु का स्मरण और उन्हें ही समर्पण-शिष्यों के जीवन का सार है। इस सरल किन्तु समर्थ साधना से उन्हें सब कुछ अनायास ही मिल जाता है।

गुरु भक्ति की इस साधना महिमा के अगले क्रम को स्पष्ट करते हुए भगवान् सदाशिव जगन्माता पार्वती से कहते हैं-

यत्पादरेणुकणिका काऽपि संसारवारिधेः।
सेतुबंधायते नाथं देशिकं तमुपास्महे॥ ५५॥
यस्मादनुग्रहं लब्ध्वा महदज्ञानमुत्सृजेत्।
तस्मै श्रीदेशिकेन्द्राय नमश्चाभीष्टसिद्धये॥ ५६॥

गुरुदेव की कृपा को उद्घाटित करने वाले इन मन्त्रों में अनगिनत गूढ़ अनुभूतियाँ समायी हैं। इन अनुभूतियों को गुरुभक्तों की भावचेतना में सम्प्रेषित करते हुए भगवान् महादेव के वचन हैं- गुरुदेव की चरण धूलि का एक छोटा सा कण सेतुबन्ध की भाँति है। जिसके सहारे इस महाभवसागर को सरलता से पार किया जा सकता है। उन गुरुदेव की उपासना मैं करूँगा, ऐसा भाव प्रत्येक शिष्य को रखना चाहिए॥ ५५॥ जिनके अनुग्रह मात्र से महान् अज्ञान का नाश होता है। वे गुरुदेव सभी अभीष्ट की सिद्धि देने वाले हैं। उन्हें नमन करना शिष्य का कर्त्तव्य है॥ ५६॥

गुरुगीता के इन महामन्त्रों के अर्थ गुरुभक्त शिष्यों के जीवन में प्रत्येक युग में, प्रत्येक काल में प्रकट होते रहे हैं। प्रत्येक समय में शिष्यों ने गुरुकृपा को अपने अस्तित्त्व में फलित होते हुए देखा है। ऐसा ही एक उदाहरण लक्ष्मण मल्लाह का है। जो अपने युग के सिद्ध सन्त स्वामी भास्करानन्द का शिष्य था। काशी निवासी सन्तों में स्वामी भास्करानन्द का नाम बड़ी श्रद्धा से लिया जाता है। सन्त साहित्य से जिनका परिचय है वे जानते हैं कि अंग्रेजी के सुविख्यात साहित्यकार मार्क ट्वेन ने उनके बारे में कई लेख लिखे थे। जर्मनी के सम्राट कैसर विलियम द्वितीय, तत्कालीन प्रिंस ऑफ वेल्स स्वामी जी के भक्तों में थे। भारत के तत्कालीन अंग्रेज सेनापति जनरल लूकार्ट तो उन्हें अपना गुरु मानते थे। इन सब विशिष्ट महानुभावों के बीच यह लक्ष्मण मल्लाह भी था। जो न

तो पढ़ा लिखा था और न ही उसमें कोई विशेष योग्यता थी। लेकिन उसका हृदय सदा ही अपने गुरुदेव के प्रति विह्वल रहता था।

भारत भर के प्राय: सभी राजा-महाराजा स्वामी जी की चरण धूलि लेने में अपना सौभाग्य मानते थे। स्वयं मार्क ट्वेन उनके बारे में अपनी पुस्तक में लिखा था- 'भारत का ताजमहल अवश्य ही एक विस्मयजनक वस्तु है, जिसका महनीय दृश्य मनुष्य को आनन्द से अभिभूत कर देता है, नूतन चेतना से उद्‌बुद्ध कर देता है। किन्तु स्वामी जी के समान महान् एवं विस्मयकारी जीवन्त वस्तु के साथ उसकी क्या तुलना हो सकती है।' स्वामी जी के योग ऐश्वर्य से सभी चमत्कृत थे। प्राय: सभी को स्वामी जी अनेक संकट-आपदाओं से उबारते रहते थे। लेकिन लक्ष्मण मल्लाह के लिए तो अपनी गुरुभक्ति ही पर्याप्त थी। गुरुचरणों की सेवा, गुरु नाम का जप, यही उसके लिए सब कुछ था।

श्रद्धा से विभोर होकर उसने स्वामी भास्करानन्द की चरण धूलि इकट्ठा कर एक डिबिया में रख ली थी। स्वामी के खड़ाऊं उसकी पूजा बेदी में थे। इनकी पूजा करना, गुरु चरणों का ध्यान करना और गुरु चरणों की रज अपने माथे पर लगाना उसका नित्य नियम था। इसके अलावा उसे किसी और योगविधि का पता न था। कठिन आसन, प्राणायाम की प्रक्रियाएँ उसे नहीं मालूम थी। मुद्राओं एवं बन्ध के बारे में भी उसे बिल्कुल पता न था। किसी मंत्र का उसे कोई ज्ञान न था। अपने गुरुदेव का नाम ही उसके लिए महामंत्र था। इसी का वह जाप करता, यदा-कदा इसी नाम धुन का वह कीर्तन करने लगता।

एक दिन प्रात: जब वह रोज की भाँति गुरुदेव की चरण रज माथे पर धारण करके गुरुदेव का नाम जप करता हुआ उनके चरणों का चिन्तन कर रहा था, तो उसके अस्तित्त्व में कुछ आश्चर्यकारी एवं विस्मयजनक दृश्यावलि प्रकट हो गयी। उसने अनुभव किया कि दोनों भौहों के बीच गोल आकार का श्वेत प्रकाश बहुत ही सघन हो

गया है। यूं तो यह प्रकाश पहले भी कभी-कभी झलकता था। यदा-कदा सम्पूर्ण साधनावधि में भी यह प्रकाश बना रहता था। पर आज उसकी सघनता कुछ ज्यादा ही थी। उसका आश्चर्य और भी ज्यादा तो तब हुआ जब उसने देखा कि गोल आकार के श्वेत प्रकाश में एक हलका सा विस्फोट सा हो गया है। और उसमें श्वेत कमल की दो पंखुड़ियाँ खुल रही हैं।

गुरु नाम की धुन के साथ ही ये दोनों श्वेत पंखुड़ियाँ खुल गयी और उसके अन्दर से प्रकाश की सघन रेखा उभरी। इसी के पश्चात् उसे अनायास ही अपने आश्रम में स्वामी भास्करानन्द ध्यानस्थ बैठे हुए दिखाई दिए। योग विद्या से अनभिज्ञ लक्ष्मण मल्लाह को यह सब अचरज भरा लगा। दिन में जब वह गुरुदेव को प्रणाम करने गया, तो उसने सुबह की सारी कथा कह सुनायी। लक्ष्मण की सारी बातें सुनकर स्वामी जी मुस्कराए और बोले- बेटा! इसे आज्ञा चक्र का जागरण कहते हैं। अब से तुम जब भी भौहों के बीच में मन को एकाग्र करके जिस किसी स्थान, वस्तु या व्यक्ति का संकल्प करोगे वही तुम्हें दिखने लगेगा।

स्वामी जी के इस कथन के उत्तर में लक्ष्मण मल्लाह ने कहा- 'हे गुरुदेव, मैं तो सदा-सदा आपको ही देखते रहना चाहता हूँ। मुझे तो इतना मालूम है कि मैं आपके चरणों की धूलि को अपनी भौहों के बीच में लगाया करता था। यह जो कुछ भी है आपकी चरण धूलि का चमत्कार है। अब तो यह नयी बात जानकर मेरा विश्वास हो गया है कि गुरुचरणों की धूलि से शिष्य आसानी से भवसागर पार कर सकता है।' लक्ष्मण मल्लाह की यह अनुभूति हम सब गुरुभक्तों की अनुभूति भी बन सकती है। बस उतना ही सघन प्रेम एवं उत्कट भक्ति चाहिए। असम्भव को सम्भव करने वाली गुरुवर की चेतना की महिमा अनन्त है।



साधन-सिद्धि गुरुवर पद नेहू

गुरुगीता के प्रत्येक महामंत्र में अपरिमित आध्यात्मिक ऊर्जा समायी है। वे धन्य हैं, अति बड़भागी हैं, जो इनका गायन करते हैं। जिनका मन इन महामंत्रों की साधना करने में अनुरक्त हुआ है। क्योंकि ऐसे अपूर्व साधकों को सहज ही सद्गुरु प्रेम की उपलब्धि होगी। और यह सद्गुरु प्रेम अध्यात्म जगत् का परम दुर्लभ तत्त्व है। जिसके हृदय में निष्कपट सद्गुरु प्रेम है, उसे सब कुछ अपने आप ही सुलभ हो जाता है। उसे किसी भी अन्य साधन एवं साधना की जरूरत नहीं रहती। समस्त साधनाओं के सुफल स्वयं ही उसकी अन्तर्चेतना में आ विराजते हैं। सद्गुरु ही आध्यात्मिक जीवन का सार निष्कर्ष है। सही साधना है, वही परम सिद्धि है और उन्हीं की कृपा से उनके ही मार्गदर्शन में साधकगण अपनी साधना को निर्विघ्न पूर्ण कर पाते हैं। तभी तो कहा गया है-'साधना-सिद्धि गुरुवर पद नेहू'।

गुरुनेह की भाव कथा में रमे हुए शिष्यों ने इस गुरु प्रेम कथा के पूर्वोक्त मंत्रों में भगवान् सदाशिव के इन वचनों को पढ़ा है कि गुरुदेव की चरण धूलि का एक छोटा सा कण सेतु बन्ध की भाँति है। जिसके सहारे इस महाभवसागर को सरलता से पार किया जा सकता है। गुरुदेव की उपासना करने में तल्लीन रहना प्रत्येक शिष्य का कर्त्तत्व है, क्योंकि उनके अनुग्रह से महान् अज्ञान का नाश होता है। गुरुदेव भगवान् सभी तरह की अभीष्ट सिद्धि देने वाले हैं। उन्हें नमन करना शिष्यों का परम धर्म है। इसका थोड़ा सा भी पालन संसार के महाभय से त्राण करने वाला है। सभी तरह की पीड़ायें गुरु कृपा से स्वयं ही शान्त हो जाती हैं।

गुरु प्रेम की इस साधना महिमा के अगले क्रम को प्रकट करते हुए देवाधिदेव भगवान् महादेव जगन्माता भवानी से कहते हैं-

पादाब्जं सर्वसंसार दावानल विनाशकम्।
ब्रह्मरन्ध्रे सिताम्भोजमध्यस्थं चन्द्रमण्डले॥ ५७॥
अकथादित्रिरेखाब्जे सहस्रदलमण्डले।
हंसापार्श्वत्रिकोणे च स्मरेत्तन्मध्यगं गुरुम्॥ ५८॥

गुरुदेव की करुणा की व्याख्या करने वाले इन महामंत्रों में साधना के गहरे रहस्य संजोये हैं। इन रहस्यों को गुरुभक्त साधकों के अन्तःकरण में सम्प्रेषित करते हुए भगवान् भोले नाथ के वचन हैं- गुरुदेव के चरण कमल संसार के सभी दावानलों का विनाश करने वाले हैं। गुरुभक्त साधकों को उन सद्गुरु का ध्यान ब्रह्मरन्ध्र में करना चाहिए॥ ५७॥ यह ध्यान चन्द्रमण्डल के अन्दर श्वेत कमल के बीच में सहस्रदलमण्डल पर अकथ आदि तीन रेखाओं से बने हंस वर्ण युक्त त्रिकोण में करना चाहिए॥ ५८॥

सद्गुरु के ध्यान की यह सर्वोच्च विधि है। यह ध्यान जीवन को शिवस्वरूप प्रदान करने वाला है। अत्यन्त प्रभावशाली एवं परम गोपनीय, अतिदुर्लभ एवं समस्त आध्यात्मिक विभूतियों को प्रकट करने वाला है। ध्यान की इस रहस्यमयो विधि का प्रयोग श्री रामकृष्ण परमहंस देव के शिष्य दुर्गाचरण नाग किया करते थे। श्री श्री रामकृष्ण ने उनकी पात्रता पर विश्वास करके यह विधि प्रदान की थी। जिनकी सन्त साहित्य में रुचि है, उनके लिए दुर्गाचरण नाग का नाम अपरिचित नहीं है। श्री रामकृष्ण के शिष्यों में उन्हें नाग महाशय के नाम से जाना जाता था। गृहस्थ होने के बावजूद उनका जीवन सन्यासियों से भी ज्यादा कठोर एवं तपपरायण था। उनके कठोर तपश्चरण के अनेकों कथानक सन्त साहित्य में पढ़े और जाने जाते हैं।

नाग महाशय का सारा दिन गरीबों एवं दुःखी जनों की चिकित्सा सेवा में बीतता था। चिकित्सक होते हुए भी उनके लिए चिकित्सा

कभी भी व्यवसाय नहीं बनी, बल्कि उन्होंने सदा ही उसे सेवा कार्य समझा। अपने इस सेवा कार्य में जिसे वे नारायण सेवा कहा करते थे। कभी-कभी तो घर का सामान और रुपये भी दे आते थे। दिन भर की इस सेवा के बावजूद नाग महाशय की प्रायः सम्पूर्ण रुचि जप-ध्यान में बीतती थी। उनकी साधना इतनी उग्र एवं कठोर थी कि सामान्य निद्रा की उन्हें कोई विशेष जरूरत नहीं रह गयी थी। अमावस के दिन उपवास रखकर गंगा के किनारे जप करते-करते वह भाव समाधि में लीन हो जाते थे। कभी-कभी तो यह समाधि दशा इतनी प्रगाढ़ होती कि नदी का ज्वार उन्हें बहा ले जाता। बाद में इन्हें तैरकर वापस आना पड़ता।

ऐसे महान् साधक नाग महाशय के लिए उनके गुरु श्री रामकृष्ण ही सर्वस्व थे। साधना के उच्च शिखरों पर आरूढ़ नाग महाशय की पात्रता-पवित्रता एवं साधना की कई बार परीक्षाएँ लेकर उन्हें सहस्रदल कमल में ध्यान करने की यह विधि सुझाई थी। ध्यान का यह दुर्लभ प्रयोग बताते समय श्री रामकृष्ण ने अपनी ओर इशारा करते हुए पूछा था-तुम इसे क्या समझते हो? नाग महाशय ने बिना किसी हिचकिचाहट के जवाब दिया-यह मुझसे मत कहलाइये ठाकुर। आपकी कृपा से मैं समझ गया हूँ कि आप वही हैं। इस पर परमहंस देव ने कहा-तब ठीक है। तुम सच्चे अधिकारी हो। तुम इसे कर सकते हो। ऐसा कहते हुए श्री ठाकुर को समाधि लग गयी। समाधि की इसी भावदशा में नाग महाशय के वक्षस्थल पर उनके पैर पड़ गये। इस स्पर्श मात्र से नाग महाशय को एक दिव्य अनुभूति हुई, जिसमें उनके अन्तःकरण में सहस्रदल कमल में सद्गुरु के ध्यान का स्वरूप प्रकट हो गया। साथ ही उन्हें सर्वत्र दिव्य ज्योति के दर्शन भी हुए।

इस अनुभूति के बाद उन्होंने श्री श्री ठाकुर द्वारा निर्दिष्ट की गयी ध्यान की विधि का प्रयोग करना शुरु किया। यहाँ पर हम इन पंक्तियों के पाठकों को यह स्पष्ट कर देना चाहते हैं कि सहस्रदल कमल में

ध्यान की यह विधि सर्वसाधारण के लिए उचित नहीं हे। जिसके आज्ञाचक्र एवं अनाहत चक्र का ठीक-ठीक विकास हो चुका होता है, उन्हीं के लिए यह दुर्लभ साधना उचित बतायी गयी है। सहस्रदल कमल पर गुरुगीता के इन महामंत्रों के अनुरूप ध्यान की परमहंस अवस्था को सिद्धों का ध्यान कहा गया है। यही कारण है कि यहाँ उसका सम्पूर्ण रहस्य नहीं बताया जा रहा। नाग महाशय की उच्च अवस्था देखकर ही श्री श्री रामकृष्ण ने उन्हें यह दुर्लभ प्रयोग बताया था।

इस ध्यान प्रयोग से नाग महाशय में असीमित योग ऐश्वर्य प्रकट हुआ। उन्होंने अपने गुरुदेव के साकार और निराकार स्वरूप के दर्शन किये। माँ गंगा स्वयं ही उनके आँगन में प्रकट हुई। अनेक देवदुर्लभ चमत्कार नाग महाशय के जीवन में प्रकट हुए। संक्षेप में इस ध्यान विधि से परम असम्भव भी सम्भव बन पड़ता है। हाँ इसे निर्दिष्ट करने का अधिकार केवल सद्गुरु को है। जिन्हें भी यह विधि गुरुदेव ने बतायी है वे आज आध्यात्मिक जीवन के परम आनन्द में विभोर हैं। गुरुदेव की कृपादृष्टि ऐसी ही सर्वफलदायिनी है।



सद्‌गुरु की कृपादृष्टि की महिमा

गुरुगीता का प्रत्येक महामंत्र गुरुभक्ति का गीत है। यह जब शिष्य की समर्पण साधना की सरगम से सुरबद्ध होता है तो इसकी सम्मोहकता भुवन मोहिनी होती है। गुरुभक्ति के ये गीत-समर्पण के संगीत से सजकर शिष्य की चेतना में ईश्वरीय प्रकाश की सृष्टि करते हैं। इस महासत्य की अनुभूति अब तक अनेकों शिष्यों को हुई है। इन क्षणों में भी बहुतेरे इस सत्य को अपने जीवन की परिभाषा मानकर जुटे हैं। उनकी लगन उन्हें अन्तर्जगत के अनेकों रहस्यों से परिचित करा रही है। इन रहस्यों में सबसे परम रहस्य एक ही है कि गुरुकृपा से सब कुछ सम्भव है, गुरु कृपा से सब कुछ सम्भव है, गुरु कृपा से सब कुछ सम्भव है। यहाँ तक कि गुरु कृपा से परम असम्भव भी सहज सम्भव है। इस सच्चाई को जब भी कोई चाहे अपने जीवन में अनुभव कर सकता है।

गुरु समर्पण की भक्ति कथा में रमे हुए शिष्यों ने गुरु गीता के पूर्वोक्त मंत्रों में भगवान् सदाशिव के इन बोध वचनों को पढ़ा कि गुरुदेव के चरण कमल संसार के सभी दावानलों का विनाश करने वाले हैं। गुरुभक्त साधकों को उन सद्‌गुरु का ध्यान ब्रह्मरन्ध्र में करना चाहिए। यह ध्यान चन्द्रमण्डल के अन्दर श्वेत कमल में अकथ आदि तीन रेखाओं से बने हंस वर्ण युक्त त्रिकोण में करना चाहिए। ध्यान की यह गुप्त गोपनीय विधि अपने परिणाम में साधक को अध्यात्म साधना का चरम फल देने वाली है। जिन्होंने भी इसे किया है वे सद्‌गुरु के कृपा के श्रेष्ठतम प्रसाद को पाने में सफल हुए हैं।

गुरु कृपा की इस साधना महिमा को और भी अधिक स्पष्टता देते हुए भगवान् भोलेनाथ जगन्माता पार्वती से कहते हैं-

सकलभुवनसृष्टिः कल्पिताशेषपुष्टिर्
निखिलनिगमदृष्टिः संपदां व्यर्थदृष्टिः।
अवगुणपरिमार्ष्टिस्तत्पदार्थैकदृष्टिर्
भवगुणपरमेष्टिर्मोक्षमार्गैकदृष्टिः ॥५९॥
सकलभुवनरंगस्थापनास्तंभयष्टिः
सकरुणरसवृष्टिस्तत्त्वमालासमष्टिः।
सकलसमयसृष्टि सच्चिदानंददृष्टिः
निवसतु मयि नित्यं श्रीगुरोर्दिव्यदृष्टिः ॥६०॥

धन्यभागी हैं वे शिष्य जो निरन्तर इस बात के लिए प्रार्थनाशील हैं कि श्रीगुरु की कृपा दृष्टि उनमें नित्य निवास करे। उनका हृदय अपने सद्‌गुरु की दिव्य दृष्टि के आलोक से आलोकित रहे। श्रीगुरु की कृपादृष्टि से ही समस्त जगत् की सृष्टि हुई है। इसी से जगत् के समस्त पदार्थों की पुष्टि होती है। समस्त सत्शास्त्रों का मर्म इसी में समाया है। श्रीगुरु की कृपादृष्टि मिलने पर ही जगत् की समस्त सम्पदाओं की व्यर्थताओं का पता चलता है। यही शिष्यों के समस्त अवगुणों को धुलकर परिमार्जित करती है। तत् सत्ता यही है। इसी से साधक में एकत्त्व से युक्त समत्व दृष्टि विकसित होती है। संसार में गुणों को विकसित करने वाली, मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करने वाली, सकल भुवनों के रंग-मञ्च की स्थापना का परम कारण यही है। यही आधार स्तम्भ है। करूणा रस का वर्षण करने वाली इस सद्‌गुरु की कृपादृष्टि में पुरूष एवं प्रकृति अन्य चौबीस तत्त्व समाए हैं। समष्टि की रूपमाला, जीवन के सभी नियम काल आदि सभी कारण जिसमें समाए हैं, वह सच्चिदानन्द स्वरूप श्रीगुरु की कृपा दृष्टि ही है॥५९-६०॥

सद्‌गुरु कृपा दृष्टि का यह मर्म साधना का गहन रहस्य है। जो केवल योग्य शिष्य के सामने ही प्रकट होता है। सामान्य जन तो इसकी सही अवधारणा भी नहीं कर सकते। इसके रहस्य को पहचानना तो बहुत दूर की बात है। जिसमें शिष्यत्व प्रगाढ़ है, जो समर्पण की

साधना में प्रवीण है। जिसने अपनी अहंता को गुरुचरणों में विसर्जित कर दिया है, वही साधक इस अनुभूति का अधिकारी बनता है। अन्य जनों को तो ये बातें कोरी काव्य कल्पना लगती हैं। कई तो ऐसे हैं, जो इस बारे में केवल तर्क-वितर्क में ही जूझते रह जाते हैं। लेकिन जो सच्चे शिष्य हैं, उन्हें अपने आप ही इस सत्य की मिठास का स्वाद मिलता रहता है। इस बारे में अनेक मार्मिक प्रसंग विख्यात् है। कई सत्य घटनाएँ संत-समाज में प्रचलित है।

इनमें से एक सत्य घटना ऐसी है जिसमें से गुरुगीता के इन महामंत्रों का मर्म उद्घाटित होता है। यह घटना विशिष्टाद्वैत सम्प्रदाय के संस्थापक भगवत्पाद श्री रामनुजाचार्य के जीवन की है। आचार्य की कृपा से अनेकों धन्य हुए। इन धन्यभागी लोगों में कुरेशभट्ट की चर्चा होती है। इन कुरेशभट्ट ने अपने सच्चे शिष्यत्व से, सार्थक समर्पण से, स्वयं की अहंता के विसर्जन से गुरु की कृपा दृष्टि को अनुभव किया। जीवन की सार्थकता पायी। सच्चा आध्यात्म लाभ अर्जित किया।

कुरेशभट्ट असाधारण मनीषी, परम तपस्वी एवं ख्याति प्राप्त विद्वान थे। उनके तर्कों की धार, प्रवाहपूर्ण प्राञ्जल भाषा पण्डित मण्डली को कुण्ठित कर देती थी। पण्डित समाज में उनका भारी मान था। अनेकों योग एवं तंत्र की सिद्धियाँ उन्हें सहज सुलभ थी। पर अध्यात्म के यथार्थ तत्त्व से वे वंचित थे। इस बात की कसक उनमें थी। लेकिन साथ ही उनमें कहीं इस बात का सूक्ष्म अहं भी था कि वे परम विद्वान एवं सिद्धि सम्पन्न हैं। अध्यात्म की जिज्ञासा एवं विद्वता के अहं ने उन्हें द्वन्द्व में डाल रखा था। समझ में नहीं आ रहा था कि वे किसे अपना मार्गदर्शक गुरु बनाएँ। अन्त में बड़े सोच-विचार के बाद उन्होंने आचार्य रामानुज की शरण में जाने का निश्चय किया। आचार्य उन दिनों भारत की धरती पर सर्वमान्य विद्वान थे। उनके तप की प्रभा से समस्त दिशाएँ प्रकाशित थी।

अपनी जिज्ञासा को लेकर वे रामानुज के पास पहुँच गए। परन्तु उनकी अहं वृत्ति के कारण आचार्य ने उन्हें अस्वीकृत कर दिया। कई बार उन्होंने इसके लिए प्रयास किया, पर हर बार असफल रहे। एक दिन जब वे आचार्य के पास बैठे थे, आचार्य की मुँहबोली बहिन अतुला उनके पास आयी और बोली- भैया ससुराल में मुझे रोटी बनाने में बड़ा कष्ट होता है। आपके पास यदि कोई उपयुक्त व्यक्ति हो तो उसे मुझे दे दीजिए, ताकि वह मेरी ससुराल में खाना पका सके। कुछ देर सोचने के बाद आचार्य की दृष्टि पास बैठे कुरेश भट्ट की ओर गयी। और उन्होंने कहा- कुरेश, मैं तुम्हें अपना शिष्य तो नहीं बना सकता, परन्तु यदि तुम चाहो तो मेरी इस बहिन के यहाँ रसोइया बन सकते हो। परम धनवान, महाविद्वान, प्रचण्ड तपस्वी सिद्धि सम्पन्न कुरेश के लिए ऐसा प्रस्ताव सुनकर पास बैठे लोग चौंक पड़े।

लेकिन कुरेश अहंभाव से भले ग्रस्त हो पर शास्त्रों के मर्म से परिचित थे। उन्हें सद्गुरु की कृपा दृष्टि का मर्म पता था। बिना क्षण की देर लगाए उन्होंने प्रस्ताव स्वीकार करते हुए कहा, प्रभु! आप शिष्य न सही मुझे अपने सेवक होने का गौरव दे रहे हैं। यही मेरे लिए सब कुछ है। उस क्षण से लेकर वर्षों तक वह अतुला की ससुराल में रोटी बनाते रहे। सबको प्रेमपूर्ण भोजन कराते रहे। साथ ही उनका मन सद्गुरु के ध्यान में रमा रहा। प्रार्थना की इस निरन्तरता ने उनके अहं को धो डाला। उनकी चेतना उनके सद्गुरु से एक हो गयी। आत्मज्ञान एवं ब्रह्मज्ञान की विभूतियाँ उनमें आ विराजी। एक दिन आचार्य स्वयं उन्हें लेने उनके पास आए और बोले- वत्स! अब तुम स्वतः ही मेरे शिष्य बन गए हो। सद्गुरु की अमृतवर्षिणी कृपा दृष्टि को पाकर उनका जीवन कृतकृत्य हो गया। सचमुच ही सद्गुरु कृपा ऐसी है, जो शिष्य के जीवन को शुद्धतम बना देती है।



मंत्रराज है सद्गुरु का नाम

गुरुगीता के गायन से गुरुभक्ति जाग्रत् होती है। शिष्य में सपर्मण की सजलता पनपती है। ज्यों-ज्यों इसकी प्रगाढ़ता बढ़ती है त्यों-त्यों शिष्य की चेतना अपने गुरुदेव में विलीन हो जाती है। शिष्य गुरुमय हो जाता है। यह सब प्रभाव-प्रताप गुरुगीता का है। धन्य हैं वे जो इसका निरन्तर पठन, चिन्तन व मनन करते हैं। गुरुभक्ति का यह शास्त्र सब भाँति से अद्भुत-अनुपम है। जो अनुभवी हैं वे इसके मर्म को जानते हैं। जिन्हें अभी इसका अनुभव नहीं मिला है, वे प्रयास करने पर इसका स्वाद चख सकते हैं। शिव के वचन- आदिमाता पार्वती के द्वारा श्रवण से उपजा यह शास्त्र अनेक आध्यात्मिक रहस्यों से भरा है। इसके प्रत्येक मंत्र में सद्गुरु की कृपा का अमृत है।

अमृत सिंचन के उपरोक्त मंत्र में गुरुगत प्राण शिष्यों ने पढ़ा कि श्रीगुरु की कृपा दृष्टि से ही इस जगत् की सृष्टि हुई है। जगत् के सभी पदार्थ इसी से पुष्ट होते हैं। सत्शास्त्रों का सार मर्म इसी में समाया है। गुरुदेव की कृपादृष्टि की अनुभूति होने पर पता चलता है कि जगत् की सभी सम्पदाएँ व्यर्थ हैं। इस दृष्टि से ही शिष्य के अवगुण घुलकर परिमार्जित होते हैं। तत् सत्ता यही है। इसी से साधक में एकत्व से युक्त समत्व दृष्टि विकसित होती है। गुणों को विकसित करने वाली, मोक्ष मार्ग को प्रकाशित करने वाली, सकल भुवनों की स्थापना का परम कारण यही है। सद्गुरु की दृष्टि में ही पुरुष-प्रकृति एवं अन्य चौबीस तत्त्व समाये हैं। समष्टि की रूपमाला व जीवन के सभी नियम-काल सभी कुछ गुरुदेव की कृपा दृष्टि में समाहित हैं।

गुरुकृपा और गुरुदेव के नाम की महिमा के एक नये आयाम को उद्घाटित करते हुए भगवान् साम्ब सदाशिव माता पार्वती से कहते हैं-

अग्निशुद्धसमंतात ज्वालापरिचकाधिया ।
मंत्रराजमिमं मन्येऽहर्निश पातु मृत्युतः ॥ ६१ ॥
तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तत्समीपके ।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्य बाह्यतः ॥ ६२ ॥
अजोऽहमजरोऽहं च अनादिनिधनः स्वयम् ।
अविकारश्चिदानन्द अणीयान्महतो महान् ॥ ६३ ॥

हे देवि! सद्गुरु का नाम परम मंत्र है। यह मंत्रराज है। इसका जप करने से बुद्धि अग्नि में तपाए सुवर्ण की भाँति शुद्ध होती है। इसके स्मरण-चिंतन से निरन्तर मृत्यु से रक्षा होती है॥ ६१ ॥ चलते हुए या बैठे हुए, दूर होने पर, पास रहने पर, बाहर होने पर अथवा अन्दर रहने पर गुरु नाम का यह महामंत्र समूची सामर्थ्य से रक्षा करता है॥ ६२ ॥ जो इस मंत्रराज की साधना करता है, उसे अजन्मा, अमर, अजर, अनादि, मृत्युरहित, निर्विकार, चिदानन्द, अणु से भी सूक्ष्म और महत् से भी विराट् आत्मतत्त्व की निरन्तर अनुभूति होती रहती है।

गुरुगीता के इन मंत्रों में साधना के कई गम्भीर रहस्य समाए हैं। इन मंत्रों में जिस साधना विधि का सांकेतिक वर्णन है, उसकी विस्तृत चर्चा कई तांत्रिक ग्रन्थों में मिलती है। इसकी विस्तार से विवेचना तो एक अलग लेख की विषय वस्तु बनेगी। जिसे श्रद्धालु शिष्यों के अनुरोध पर फिर कभी दिया जाएगा। परन्तु यहाँ संक्षेप में सद्गुरु नाम के महामंत्र का उल्लेख अवश्य किया जा रहा है। इसे ही भगवान् भोलेनाथ ने परम मंत्र एवं मन्त्रराज कहा है। इस मंत्र का स्वरूप क्या होगा? इस प्रश्न के उत्तर में गुरुभक्त सिद्धजन कहते हैं कि ॐ ऐं (नाम) आनन्दनाथाय गुरुवे नमः ॐ, इस प्रकार सद्गुरु के नाम का जप करना चाहिए। इस मंत्र के स्वरूप को अपने गुरुदेव के मंगलमय नाम के उदाहरण से भी समझा जा सकता है। जैसे अपने गुरुदेव का नाम है 'श्रीराम' तो उनके नाम का महामंत्र होगा- 'ॐ ऐं श्रीराम आनन्दनाथाय गरुवे नमः ॐ'। जो गुरुभक्त हैं वे प्रतिदिन गायत्री

महामंत्र के जप के साथ इस महामंत्र की एक माला का भी जप कर सकते हैं।

अनुभवी साधकों का तो यह भी कहना है कि गायत्री महामंत्र के जप का दशांश गुरु नाम मंत्र का जप करने से गायत्री जप पूर्ण हो जाता है। नियमित साधना करने वाले सूक्ष्मतत्त्व के ज्ञाता साधकों का यह मानना है कि कई बार जन्म-जन्मान्तर के अशुभ कर्मों के कारण गायत्री का जप शीघ्र फलदायी नहीं हो पाता। विभिन्न कामनाओं की पूर्ति के लिए किए गए अनुष्ठान सफल नहीं होते हैं। इसका कारण केवल इतना ही है कि विगत जन्मों के अशुभ संस्कार, दुर्लघ्य प्रारब्ध इसमें बाधा उत्पन्न कर रहे हैं। और इसी वजह से गायत्री महामंत्र के कई अनुष्ठान कर लेने के बावजूद भी पुत्र प्राप्ति की, धन प्राप्ति की कामनाएँ अधूरी रहती हैं। कई बार तो साधक के मन की आस्था घटने लगती है। उसे अविश्वास घेर लेता है। अन्तःकरण में अंकुरित होने वाले सन्देह एवं भ्रम कहने लगते हैं कि कहीं गायत्री साधना के ही प्रभाव में कुछ कमी तो नहीं।

ऐसी स्थिति में सद्गुरु का तपोबल ही सम्बल होता है। जो काम अपने प्रयास, पुरुषार्थ से असम्भव होता है वह गुरुकृपा से सम्भव होता है। गुरु कृपा ही असम्भव को सम्भव बनाने वाली प्रक्रिया है। पर इसका विधिवत् आह्वान करना पड़ता है। इसे अपने अन्तःकरण में धारण करना पड़ता है। यदि ऐसा किया जा सके तो दुष्कर और दुरूह प्रारब्ध को भी मोड-मरोड़ कर अपने अनुकूल बनाया जा सकता है। सभी तरह की विघ्न-बाधाओं को धूल-धूसरित और धराशायी किया जा सकता है। राह के सभी रोड़े फिर कभी आड़े नहीं आते। असफलता-सफलता में परिवर्तित होती है। खोया आत्मबल फिर से वापस मिलता है।

बस इसके लिए करना इतना ही है कि सन्ध्यावंदन के बाद गायत्री जप करने से पहले एक माला गुरु नाम के महामंत्र का जप

करें। फिर इसके बाद गायत्री जप करें और बाद में गायत्री जप का दशांश गुरु नाम मंत्र का जप करें। उदाहरण के लिए यदि तीस माला गायत्री जपी गयी है तो तीन माला गुरुनाम मंत्र का जप करें। कई तन्त्र ग्रन्थ यह भी कहते हैं कि प्रत्येक दस माला के बाद एक माला गुरु नाम मंत्र का जप किया जा सकता है। कई साधकों ने इस विधि को भी परम कल्याणकारी अनुभव किया है। इस विधि से की गई साधना न केवल लौकिक उपलब्धियाँ एवं सफलताएँ प्रदान करती हैं बल्कि अलौकिक आध्यात्मिक सफलताओं के भी भण्डार खोलती हैं। इस तरह नियमित निरन्तर की गई साधना से साधक को आत्मतत्त्व की अनुभूति होती है। उसका जीवन कृतकृत्य एवं कृतार्थ होता है। गुरुदेव के तपोबल को और अधिक शिष्य कैसे आत्मसात करें, इसकी चर्चा अगले मंत्रों में की गई है।



भावनाओं का हो सद्‌गुरु की पराचेतना में विसर्जन

गुरुगीता का गायन करते हुए शिष्यों की अन्तश्चेतना श्रद्धा रस में भीग रही है। भक्ति का उफान उनकी भाव चेतना में हिलोरें ले रहा है। इन हिलोरों में न केवल अतीत के कल्मष घुले हैं, बल्कि प्रखरता प्रकाश की नयी आभा भी फैली है। गुरुगीता के मंत्रों का प्रभाव ही कुछ ऐसा है। ये भगवान् महादेव के वचन हैं, जो सदा सर्वदा अमोघ हैं। भगवान् सदाशिव की वाणी तीनों कालों में सत्य है। महाकाल के वचनों पर काल का कोई प्रभाव नहीं है। काल का पाश, देश की सीमाएँ इन्हें छू भी नहीं सकती। इन वचनों का सही-सही मर्म तो केवल माता पार्वती ने ही समझा। जो प्रथम श्रोता होने के साथ भगवान् साम्ब सदाशिव की प्रथम शिष्या भी हैं। अपने सद्‌गुरु की अनुगत और उन्हीं में विलीन।

शिष्यों के लिए वह परम आदर्श हैं। समर्पण-विसर्जन व विलय की सघनता की साकार मूर्ति। जो शिष्य हैं वे इन सजल श्रद्धा के साकार भाव विग्रह से श्रद्धा के कुछ कण पाकर स्वयं को प्रखर प्रज्ञा रूपी गुरुदेव में लय कर सकते हैं। इस भाव प्रवाह में अवगाहन करने वालों ने गुरु भक्ति की पूर्व कथा में पढ़ा कि सद्‌गुरु का नाम मंत्रराज है। इसका जप करने से बुद्धि खरा सोना बनती है। इसके स्मरण-चिंतन से महासंकटों से रक्षा होती है। हर किसी अवस्था में चलते-फिरते, बैठते-उठते यह मंत्रराज साधक की रक्षा करता है। जो भी शिष्य इसकी साधना करता है, उसे अविनाशी, निराकार व निर्विकार आत्म तत्त्व की अनुभूमि होती रहती है।

गुरुदेव के इस अद्‌भुत स्वरूप के एक अन्य रहस्यमय आयाम

को प्रकट करते हुए भगवान् भोलेनाथ आदिमाता भवानी से कहते हैं-

अपूर्वाणां परं नित्यं स्वयं ज्योतिर्निरामयम् ।
विरजं परमाकाशं ध्रुवमानन्दमव्ययम् ॥ ६४॥
श्रुतिः प्रत्यक्षमैतिह्यमनुमानश्चतुष्टयम् ।
यस्य चात्मतपो वेद देशिकं च सदा स्मरेत् ॥६५॥
मननं यद्भवं कार्यं तद्वदामि महामते ।
साधुत्वं च मया दृष्ट्वा त्वयि तिष्ठति साम्प्रतम् ॥६६॥

सद्गुरु चेतना का यह तत्त्व सब भाँति अपूर्व है, नित्य है, स्वयं प्रकाशित एवं निरामय है। इसमें किसी तरह का विकार नहीं है। यह परमाकाश रूप, अचल, अक्षय और आनन्द का स्रोत है॥ ६४॥ वेद स्तोत्र भी यही कहते हैं। प्रत्यक्ष, शब्द आदि चारों प्रमाणों से भी यही सत्य सिद्ध होता है। गुरुदेव की आत्मचेतना, तपश्चेतना का सदा-सदा स्मरण करना चाहिए॥ ६५॥ हे महामति देवि! इसके मनन से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं। तुम्हारी साधुता को देखकर ही मैंने यह सत्य तुम्हें बताया है।

गुरुगीता के मंत्रों में इस परम सत्य का उद्घाटन है कि गुरुदेव ही स्मरणीय हैं, चिंतनीय हैं और मननीय हैं। उनकी पराचेतना में रमण करने से श्रेष्ठ और कुछ नहीं है। कई शिष्य-साधक बौद्धिक रूप से इस सच्चाई को जानते हैं, किन्तु भावरूप से वे इसमें डूब नहीं पाते, निमग्न नहीं हो पाते। इसका कारण यह होता है कि उनकी बुद्धि तरह-तरह सांसारिक गणित लगाती रहती है। इस बुद्धि को श्रीमद्भगवद्गीता के गायक **'व्यावसायित्मका बुद्धिः'** कहते हैं। श्री रामकृष्ण परमहंस इसके लिए 'पटवारी बुद्धि' का शब्द उपयोग करते थे। जोड़-तोड़, कुटिलता-क्रूरता में निरत रहने वालों के लिए न तो साधना सम्भव है और न ही उनसे समर्पण बन पड़ता है। और जो अपनी अहंता का सिर उतार कर गुरुचरणों पर रखने का साहस नहीं कर सकते, भला उनके लिए गुरु भक्ति कहाँ और किस तरह से

सम्भव है। ऐसों को सद्गुरु चाहकर भी नहीं अपना पाते। शिष्य की भाव मलीनता उन्हें यह करने ही नहीं देती।

इस भाव सत्य से जुड़ा एक बहुत ही प्रेरक प्रसंग है। यह प्रसंग श्री श्री रामकृष्ण परमहंस देव के गृही शिष्य श्री रामचन्द्र दत्त के जीवन का है। श्री दत्त महाशय की भक्ति अपने गुरु के प्रति बढ़ी-चढ़ी थी, परन्तु इसी के साथ उनमें साँसारिक बुद्धि की भी छाया थी। उनमें अपनी विद्या-बुद्धि एवं धन-पैसे का अहंकार भी था। उनके संदर्भ में एक बात और उल्लेखनीय है कि श्री परमहंस देव के संन्यासी शिष्य स्वामी अद्‌भुतानन्द पहले इन्हीं के यहाँ नौकरी करते थे। इन अद्‌भुतानन्द को श्री रामकृष्ण के भक्त समुदाय में लाटू महाराज के नाम से जाना जाता है। दत्त महाशय ने ही उन्हें ठाकुर से मिलवाया था। बाद में उनकी भक्ति भावना को देखकर उन्हें ठाकुर की सेवा में अर्पित कर दिया।

यही दत्त महाशय एक दिन श्री श्री ठाकुर के पास दक्षिणेश्वर आये हुए थे। स्वाभाविक रूप से वे अपने साथ अपने गुरुदेव के लिए कुछ फल-मिठाइयाँ एवं कुछ अन्य सामान लाये हुए थे। ठाकुर ने स्वभावत: यह सामान युवा भक्त मण्डली में बाँट दिया। उन्हें इस तरह सामान बाँटते देखकर दत्त महाशय थोड़ा कुण्ठित हो गये। उन्हें लगा कि इतना कीमती सामान और इन्होंने इन लड़कों में बाँट दिया। अच्छा होता कि ये इस सबको अपने लिए रख लेते और बहुत दिनों तक इसका उपयोग करते रहते। उनकी ये सांसारिक भावनाएँ ठाकुर से छिपी न नहीं। जिस समय वे यह सब सोच रहे थे उस समय शाम का समय था और वे परमहंस देव के पास बैठे उनके पाँव दबा रहे थे।

इन भावनाओं के उनके मन में उठते ही श्री श्री रामकृष्ण देव ने अपने पाँव से उनके हाथ झटक दिये और बाँटने से बचा हुआ उनका सामान उनके पास फेंकते हुए बोले-तू अब जा यहाँ से। मैं तुझे अब और बर्दास्त नहीं कर सकता। रही बात उस सामान की जो तू अब तक यहाँ लाया करता था, वह भी और उससे ज्यादा तुझे मिल

जायेगा। मैं माँ से प्रार्थना करूँगा कि वह सब कुछ बल्कि उससे बहुत ज्यादा तुझे लौटा दे। अचानक ठाकुर में आये इस भाव परिवर्तन से दत्त महाशय तो हतप्रभ रह गये। पर साथ ही वे यह भी समझ गये कि अन्तर्यामी ठाकुर ने उनके मन में उठ रही सभी भावनाओं को जान लिया है।

पर अब किया भी क्या जा सकता था? शाम गहरी हो गयी थी। वापस कलकत्ता भी नहीं लौट सकते थे। वैसे भी ऐसे मन:स्थिति में वह कलकत्ता लौटना भी नहीं चाहते थे। बस भरे हुए मन से सोचा ठाकुर के द्वारा तिरस्कृत जीवन अब किस काम का? और उनके अन्दर उमड़ आयी भक्ति भावना ने यह प्रेरणा दी कि क्यों न माँ के मन्दिर के पास बैठकर ठाकुर के नाम का जप किया जाय। बस 'ॐ नमो भगवते रामकृष्णाय' उनके कण्ठ से, प्राणों से और हृदय से बहने लगा। उनकी भावनाएँ अपने दिव्य गुरु में विलीन होने लगी। रात गहरी होती गयी और वह अपने सद्‌गुरु की पराचेतना में विलीन होते गये। भाव विलीनता इतनी प्रगाढ़ हुई कि शिष्य वत्सल श्री परमहंस देव स्वयं उनके पास आ गये और बोले-चल तेरा परिमार्जन हो गया। श्री ठाकुर के चरणों को अपने आँसुओं से धोते दत्त महाशय अनुभव कर रहे थे कि सद्‌गुरु की पराचेतना ही चिंतनीय-मननीय है। इस सत्य को हम भी अनुभव कर सकते हैं।



सद्गुरु की कठोरता में भी प्रेम छिपा है

गुरुगीता में सद्गुरु महिमा के गीत हैं। इनका गायन करने वाले शिष्यों की चेतना पवित्र-प्रखर एवं प्रकाशित होती है। ये गीत कितने भी गाये जायें, इनका रस समाप्त नहीं होता है। और नहीं इनका प्रभाव क्षमता पा सकता है। युगों-युगों से इस सत्य को सभी शिष्यों ने अनुभव किया है और कुछ बड़भागी शिष्य इस सच्चाई को अपनी साधना सम्पदा मानकर जी रहे हैं। हाँ यह सच है कि धन-मान, यश-कीर्ति सब कुछ होने पर भी जिस शिष्य के होठों पर गुरु महिमा के गीत नहीं है। वह अभागा है, कंगाल है, समस्त आश्रयों के होने के बावजूद निराश्रित है। जबकि इसके विपरीत जिस शिष्य के पास न तो धन है और न मान है, न यश है, न कीर्ति है, वह यदि गुरु महिमा के गीतों को गाने की कला को जानता है तो परम सौभाग्यशाली है।

पिछले मंत्रों में यह बताया गया है कि सद्गुरु चेतना सब भाँति अपूर्व है, नित्य है, स्वयं प्रकाशित और निरामय है। इसमें सभी विकारों का अभाव है। यह परमाकाश रूप अचल व अक्षय-आनन्द का स्रोत है। वेद आदि शास्त्रों एवं सभी प्रभावों से भी यही सिद्ध होता है। गुरुदेव की आत्मचेतना, तपश्चेतना का सदा-सदा स्मरण करना चाहिए। शिष्य के लिए इससे श्रेष्ठ अन्य कोई साधन नहीं है।

गुरु महिमा के इन गीतों को एक नये स्वर में पिरोते हुए भगवान् भोलेनाथ आदिमाता जगदम्बा से कहते हैं-

अखण्डमण्डलाकारं, व्याप्तं येन चराचरम् ।
तत्पदं दर्शितं येन, तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ६७॥
सर्वश्रुतिशिरोरत्नविराजितपदाम्बुजः ।
वेदान्ताम्बुजसूर्यो, यस्तस्मै श्री गुरवेनमः ॥ ६८॥
यस्य स्मरणमात्रेण, ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम् ।
य एव सर्वसंप्राप्तिस्तस्मै श्री गुरवे नमः ॥ ६९॥
चैतन्यं शाश्वतं शान्तं व्योमातीतं निरञ्जनम् ।
नादबिन्दुकलातीतं तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ७०॥

अखण्ड वलयाकार चेतना के रूप में जो इस सम्पूर्ण चर-अचर जगत् में व्याप्त हैं। ब्रह्म तत्त्व व आत्म तत्त्व के रूप में यही चेतना उनके श्री चरणों की कृपा से दर्शित होती है। उन श्री सद्‌गुरु को नमन है॥ ६७॥ वैदिक ऋचाओं एवं उपनिषद् की श्रुतियों के सभी महावाक्य रत्न उनके श्री चरणों में विराजित हैं। उन गुरुदेव की चेतना से सूर्य का प्रकाश पाकर ही वेदान्त का कमल खिलता है, ऐसे सद्‌गुरु को नमन है॥ ६८॥ जिनके स्मरण करने भर से अपने आप ही ज्ञान उत्पन्न होता है, जो अपने में सभी आध्यात्मिक सम्पदा की प्राप्ति है, उन कृपालु सद्‌गुरु को नमन है॥ ६९॥ जो परम चैतन्य, शाश्वत, शान्त और आकाश से भी अतीत और माया से परे हैं। वे नाद, बिन्दु एवं कला से भी परे हैं, ऐसे सद्‌गुरु को नमन है॥ ७०॥

गुरु महिमा के महामंत्रमय स्त्रोत होने के साथ तत्त्वचिंतक को भी प्रकाशित करते हैं। निराकार-माया से परे परमेश्वर ही माया को वशवर्ती करके शिष्य के कल्याण के लिए सद्‌गुरु की काया धारण करते हैं। वे देहधारी होने पर भी देहातीत हैं। उन्हें जाने लेने पर सब कुछ जान लिया जाता है। जो उनकी शरण में गया उसे सब कुछ स्वयं ही मिल जाता है। उनमें भक्ति, ज्ञान, कर्म, योग, ध्यान आदि सभी सत्य सम्पूर्ण रूप से प्रकाशित है। जिन्होंने भी यह बात अपने अन्तःकरण में धारण कर ली वे अध्यात्मवेत्ता हो गये।

यहाँ पर एक सत्य घटना की चर्चा की जा रही है। यह चर्चा अनेक शिष्यों के मनों को सत्प्रेरणाओं से भरेगी-ऐसा विश्वास है। यह घटना महान् संत रामदास काठिया बाबा के शिष्य गरीबदास के बारे में है। गरीबदास पढ़े-लिख तो नहीं थे,पर उनके हृदय में अपने गुरुदेव के प्रति अगाध भक्ति थी। लेकिन इस भक्ति के बावजूद बाबा रामदास उनसे बड़ी कठोरता व उपेक्षा का बर्ताव करते थे। आगन्तुक शिष्यों को बाबा के इस व्यवहार पर बड़ा अचरज भी होता। वे सोचते कि सभी के साथ प्रेम भरी कोमल-मीठे बोल बोलने वाले बाबा आखिर गरीबदास पर ही क्यों बात-बात पर बरसते हैं। पर किसी की हिम्मत नहीं पड़ती थी कि उनसे कोई कुछ पूछे। लेकिन बाबा के इस बर्ताव से न तो गरीबदास की श्रद्धा कम हुई और न ही उसका विश्वास डिगा।

एक बार तो जैसे बाबा रामदास ने कठोरता की सारी सीमाएँ ही पार कर डाली। हुआ यूँ कि उन दिनों ब्रज परिक्रमा हो रही थी। ८४ कोस की उस परिक्रमा में उसे काफी समान लाद कर चलना पड़ता था। जहाँ यात्रा रुकती वहाँ उसे थके-हारे होने पर भी ४०-५० आदमियों का भोजन बनाना पड़ता। इतना कठिन श्रम करने के बाद भी उसका नियम था कि वह सभी को खाना खिलाकर स्वयं भोजन करता था। श्रद्धासिक्त भक्ति और अद्भुत विनयशीलता इसी को उसने अपनी भक्ति की परिभाषा बना लिया था।

उस दिन गरीबदास ने यात्रा के पड़ाव पर अपने नियम के अनुसार भोजन बनाया। सभी साधुओं व अभ्यागतों के साथ अपने गुरुदेव बाबा रामदास को भी आदर सहित बुलाया और प्रेम सहित उसने उन्हें खाना परोसा। पर यह क्या-आसन पर बैठते ही उन्होंने रोटी हाथ में ली और उसे दूर फेंकते हुए गरज कर कहा- बेशरम मेरे लिए कच्ची रोटियाँ बनाता है, जबकि रोटियाँ अच्छी तरह सिकी हुई थी। इतना कहकर भी वह चुप नहीं रहे और अपनी लाठी उसके सिर पर दे मारी। लाठी की चोट से गरीबदास के सिर से खून बहने लगा। हारा-थका वह गुरुभक्त दर्द से बुरी तरह चीखा और बेहोश हो गया। बाबा रामदास का यह व्यवहार वहाँ उपस्थित जनों में से किसी को अच्छा न लगा। पर इससे बेखबर बाबा मजे से एक ओर चलते बने।

इधर जब गरीबदास को होश आया तो उन्होंने बड़ी आतुरता से अपने गुरुदेव बाबा रामदास को ढूँढा। और उनके चरणों पर सिर रखते हुए बोला- हे मेरे कृपालु गुरुदेव, हे मेरे आराध्य! मुझसे अपराध हो गया। क्षमा करें भगवन्! शिष्य की इस गहरी श्रद्धा आज विजयी हुई। परम कठोर बर्ताव करने वाले उसके गुरुदेव आज मातृवत् हो उठे। उसे उन्होंने अपनी छाती से लगाते हुए कहा-बेटा! सद्गुरु की कठोरता में ही उनका प्रेम है। जो इसे जानता है-वही सच्चा शिष्य है। मेरी कठोरता से तेरे जन्म-जमान्तर के कर्म नष्ट हो गये हैं। अब तू मेरे आशीर्वाद से परमहंसत्व प्राप्त कर धन्य हो जायेगा। गुरु की कृपा की यह महिमा अनन्त है।



मद्गुरुः श्री जगद्गुरुः

गुरुगीता के गायन से भावनाओं में गुरुभक्ति का ज्वार उठता है। ऐसा वे कहते हैं, जो शिष्यत्व की, समर्पण की डगर पर चल रहे हैं। इन भावनाशीलों को प्रतिमास गुरुगीता की अगली कड़ी की प्रतीक्षा रहती है। बड़ी अकुलाहट, बड़ी त्वरा होती है, उनके मन में। श्वास-श्वास में गुरुदेव का नाम, मन में उनका चिन्तन, भावनाओं में उनकी ही करूणापूर्ण छवि, यही शिष्य का परिचय है। जो शिष्य होने की लालसा में जी रहे हैं- उन्हें सब कुछ मिलेगा। उनकी राहों में भले ही काँटे बिछे हों, पर जल्दी ही उनकी डगर में फूल खिलेंगे। बस धीरज और साहस का सम्बल नहीं छोड़ना है। सद्गुरु ही जीवन की एकमात्र सच्चाई हैं। उनके चरणों की छाँव में अध्यात्म विद्या के सभी रहस्य अनायास मिल जाते हैं।

बस गुरु चरणों में भक्ति सदा बनी रहे। उनको सदा नमन होता रहे। जिनकी अन्तर्चेतना में सद्गुरु नमन के स्वर मुखरित होते हैं, उन्हें स्मरण होगा कि पिछले मंत्रों में यह कहा गया है कि अखण्ड वलयाकार चेतना के रूप में जो इस सम्पूर्ण चर-अचर में व्याप्त हैं, ब्रह्मतत्त्व एवं आत्मतत्त्व के रूप में उन्हीं गुरुवर की चेतना दर्शित होती है। वैदिक ऋचाएँ हों या उपनिषदों के महावाक्य रत्न सभी गुरुदेव की कृपा से अपना प्रकाश देते हैं। गुरुदेव के स्मरण मात्र से ही ज्ञान उत्पन्न होता है। वे प्रभु ही परम चैतन्य, शाश्वत, शान्त और आकाश से भी अतीत एवं माया से परे हैं। वे नादबिन्दु एवं काल से परे हैं, उन परम कृपालु सद्गुरु को नमन है।

गुरु नमन की इस पावन प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए भगवान् भोलेनाथ माँ पार्वती से कहते हैं-

स्थावरं जंगमं चैव तथा चैव चराचरम् ।
व्याप्तं येन जगत्सर्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७१ ॥
ज्ञानशक्तिसमारूढस्तत्त्वमालाविभूषितः ।
भुक्तिमुक्तिप्रदाताय तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७२ ॥
अनेकजन्मसंप्राप्त-सर्वकर्मविदाहिने ।
स्वात्मज्ञानप्रभावेण तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥ ७३ ॥
न गुरोरधिकं तत्वं न गुरोरधिकं तपः ।
तत्वम् ज्ञानात्परं नास्ति तस्मै श्रीगरवे नमः ॥ ७४ ॥
मन्नाथः श्रीजगन्नाथो मद्गुरुस्त्रीजगद्गुरुः ।
ममात्मा सर्वभूतात्मा तस्मै श्रीगरवे नमः ॥ ७५ ॥

परम आराध्य गुरुदेव इस जड़-चेतन, चर-अचर सम्पूर्ण जगत् में संव्याप्त हैं। उन सद्गुरु को नमन है ॥७१ ॥ ज्ञान शक्ति पर आरूढ़, सभी तत्वों की माला से विभूषित गुरुदेव भोग एवं मोक्ष दोनों ही फल प्रदान करने वाले हैं। उन कृपालु सद्गुरु को नमन है ॥ ७२ ॥ जो अपने आत्मज्ञान के प्रभाव से शिष्य के अनेक जन्मों से संचित सभी कर्मों को भस्मसात कर देते हैं, उन कृपालु सद्गुरु को नमन है ॥ ७३ ॥ श्री गुरुदेव से बढ़कर अन्य कोई तत्त्व नहीं है। श्री गुरु सेवा से बढ़कर कोई दूसरा तप नहीं है, उनसे बढ़कर अन्य कोई ज्ञान नहीं है, ऐसे कृपालु गुरुदेव को नमन है ॥ ७४ ॥ मेरे स्वामी गुरुदेव ही जगत् के स्वामी हैं। मेरे गुरुदेव ही जगत्गुरु हैं। मेरे आत्म स्वरूप गुरुदेव समस्त प्राणियों की अन्तरात्मा हैं। ऐसे श्री गुरुदेव को मेरा नमन है ॥ ७५ ॥

सद्गुरु महिमा का यह मंत्रात्मक स्तोत्र अपने आप में अनेकों दार्शनिक रहस्यों को समाए हैं। इसमें श्रद्धा एवं चिन्तन दोनों का ही मेल है। सद्गुरुदेव की पराचेतना न केवल सर्वव्यापी है। बल्कि शिष्य के सभी पूर्वसंचित कर्मों को नष्ट करने में समर्थ है। सचमुच ही गुरुदेव से श्रेष्ठ अन्य कोई भी तत्त्व या सत्य नहीं है। क्योंकि जो कर्म के

गहनतम रहस्य को जानते हैं, उनके लिए यह बड़ा ही स्पष्ट है कि कर्मों के क्रूर, कुटिल कुचक्र से सद्गुरु ही उबारने में समर्थ होते हैं। तभी तो गोसांई बाबा ने कहा है- गुरु बिन भवनिधि तौर न कोई, जो विरंचि संकर सम होई। यानि कि श्री गुरुदेव के बिना कोई भी संसार सागर को नहीं पार कर सकता, फिर भले ही ब्रह्मा अथवा शिव की भाँति ही समर्थ क्यों न हों।

इस सत्य को उजागर करने वाली एक सच्ची घटना यहाँ पर कहने का मन है। इस घटना पर मनने करके श्री गुरुदेव की कृपा का अनुभव किया जा सकता है। यह सत्य कथा रूसी सन्त गुरजिएफ एवं उनके एक शिष्य रूशिल मिनकोव के बारे में है। गुरजिएफ महात्मा कबीर की भाँति बड़े अक्कड़-फक्कड़ सन्त हुए हैं। वे परम ज्ञानी होने के साथ आध्यात्मिक रहस्यों के महान् जानकार थे। इस सब के बावजूद उनका व्यवहार काफी अटपटा-बेबूझ और विचित्र सा होता था। उनके शिष्य समझ ही नहीं पाते थे कि ये क्यों और किसलिए ऐसा कर रहे हैं। पर शायद यही शिष्यों की परीक्षा का उनका ढंग था। इसी कसौटी पर वे शिष्यों की श्रद्धा को जाँचा-परखा करते थे। जो इस जाँच-परख में सही पाया गया वही आध्यात्मिक ज्ञान के लिए सुयोग्य पात्र समझा जाता था।

रूशिल मिनकोव ने अपने संस्मरणों में लिखा है कि उनके साथ यह परीक्षा लगातार चौबीस सालों तक चलती रही। रूशिल लिखते हैं कि वह लगभग साढ़े तेइस साल की आयु में गुरजिएफ से मिले थे। बातचीत एवं श्रद्धा की अभिव्यक्ति के क्रम में उन्होंने कहा- गुरुदेव मैं अध्यात्मविद्या पाना चाहता हूँ। शिष्य की इस चाहत पर गुरजिएफ बोले- ठीक है मिलेगी। पर देख पाँव जमाकर इस कोठरी में रहना। जो भी हो उसे सहना, भागना मत। पीड़ा, परेशानी, अपमान, तिरस्कार सभी कुछ यदि तू सहता रहा तो समझ तू वह सब पा जाएगा जिसकी तुझे चाहत है। अपने गुरु के इस कथन पर मिनकोव ने हाँ भर दी।

हालांकि उसे उस समय भविष्य में आने वाली परेशानियों का कोई अन्दाजा नहीं था।

गुरजिएफ के शरीर छोड़ते ही उस पर एक के बाद एक नए-नए वज्रपात होना शुरू हो गए। सालों-साल चलने वाली शारीरिक व्याधियाँ, जैसे-तैसे घिसट-घिसट कर चलता जीवन। हालांकि मिनकोव अपनी पीड़ाओं के बावजूद किसी अन्य की सहायता करने से चूकता नहीं था। जिनकी वह सहायता करता उसमें पुरूष-स्त्रियाँ, बच्चे सभी शामिल थे। अपनी सारी सहायताओं एवं सभी अच्छे कर्मों के बदले उसे वंचना ही मिली। प्रत्येक सत्कर्म के बदले दुष्परिणाम। जब तब लगने वाले चारित्रिक लांछन उसे प्राय: पीड़ाओं में डुबोए रखते। पर करता भी क्या श्री गुरुदेव को दिया गया वचन था। ऐसी ही विपत्तियों से जूझते-जूझते अठारह वर्ष बीए गए। हालांकि संकट यथावत थे।

उसके मन में शंकाएँ घर करने लगी। क्योंकि शरीर छोड़ने के बाद गुरजिएफ ने उसे स्वप्न में भी दर्शन नहीं दिए थे। पर इस उन्नीसवें साल में गुरजिएफ की एक अन्य शिष्या ने उसे बताया कि अभी ६ वर्षों की सघन पीड़ाएँ सहनी है। गुरुदेव यही चाहते हैं। ६ सालों के सघन मानसिक यातना एवं कठोर श्रम के बाद ही तुम्हारे जीवन में प्रकाश का अवतरण होगा। मिनकोव ने छ: वर्ष भी बिताए और अपने निष्कर्ष में कहा कि आज मैं गुरुदेव की कृपा को अनुभव कर रहा हूँ। जो कर्मजाल शायद अनेकों जन्मों में भी न कटता उन्होंने मात्र चौबीस सालों में ही काट दिया। सद्गुरु जिस पर जितना ज्यादा कठोर हैं, समझो उस पर उतने ही अधिक कृपालु हैं। मिनकोव की ये बातें रहस्यमय होते हुए भी सद्गरु की करूणा को जताती हैं।



मंत्रमूलं गुरोर्वाक्यम्

गुरुगीता के महामंत्रों में साधना की दुर्लभ अनुभूतियाँ संजोयी है। लेकिन यह मिलती केवल उन्हें है, जो निष्कपट भाव से इन मंत्रों की साधना करते हैं। यहाँ साधना का अर्थ गुरुगीता के मंत्रों का बारबार उच्चारण नहीं बल्कि बार-बार आचरण है। जो कहा जा रहा है, उसे रटो नहीं, बल्कि उसें जीवन में उतारो, आचरण में ढालो। उसे कर्तव्य मानकर करो। जो इस साधना सूत्र को स्वीकारते हैं, फलश्रुतियाँ भी उन्हीं को अन्तश्चेतना में उतरती है। सिर्फ बातें बनाने से काम नहीं चलता। श्री राम कृष्ण परमहंस देव कहा करते थे कि यदि घर से चिट्ठी आयी है, दो जोड़ी धोती, एक कुर्ते का कपड़ा और एक किलो सन्देश भिजवाना है। तो फिर वैसा करना पड़ेगा। बाजार जाकर यह सामान खरीद कर भिजवाना होगा। केवल चिट्ठी रटने से काम चलने वाला नहीं है।

गुरु गीता के महामंत्रों में महेश्वर महादेव जो कुछ भी माता पार्वती से कह रहे हैं, उसके अनुसार जीवन को गढ़ना-ढालना होगा। जो ऐसा करने में जुटे हैं, उन्हें स्मरण होगा कि पिछले मंत्रों में यह कहा गया है कि गुरुदेव की चेतना ही इस जड़-चेतन, चर-अचर में संव्याप्त है। ज्ञान शक्ति पर आरुढ़ गुरुदेव प्रसन्न होने पर शिष्यों को भोग एवं मोक्ष दोनों का ही वरदान देते हैं। वे अपने ज्ञान व तप के प्रभाव से सहज ही शिष्यों के संचित कर्मों को भस्म कर देते हैं। श्री गुरुदेव से बढ़कर अन्य कोई तत्त्व नहीं है। उनकी सेवा से अधिक कोई दूसरा तप नहीं है। गुरुदेव ही जगत के स्वामी हैं, वे ही जगत्‌गुरु हैं। शिष्य के आत्मरूप गुरुदेव ही अन्तर्चेतना ही सृष्टि के समस्त प्राणियों की आत्मा है।

ऐसे सर्वव्यापी सद्गुरु की महिमा बताने के बाद भगवान भोलेनाथ गुरुदेव की चेतना में समाए अन्य आध्यात्मिक रहस्यों को उजागर करते हैं। वे भगवती पार्वती से कहते हैं-

ध्यानमूलं गुरोर्मूर्तिः पूजामूलं गुरोःपदम्।
मंत्रमूलं गुरोवाक्यं मोक्षमूलं गुरोःकृपा॥ ७६॥
गुरुरादिनादिश्च गुरुः परम दैवतम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मै श्री गुरवे नमः॥ ७७॥
सप्त सागर पर्यन्त तीर्थास्नादिकं फलम्।
गुरोरङ्घ्रिपयोबिन्दु सहस्त्राशेन दुर्लभम्॥ ७८॥
हरौ रुष्टे गुरस्त्राता गुरौ रुष्टे न कश्चन।
तस्मात सर्व प्रयत्नेन श्रीगुरु शरणं व्रजेत॥ ७९॥
गुरुरेव जगत्सर्वं ब्रह्म विष्णुशिवात्मकम्।
गुरोः परतरं नास्ति तस्मात्सपूजयेद्गुरुम्॥ ८०॥

परम पूज्य गुरुदेव की भावमयी मूर्ति ध्यान का मूल है। उनके चरण कमल पूजा का मूल हैं। उनके द्वारा कहे गए वाक्य मूल मंत्र हैं। उनकी कृपा ही मोक्ष का मूल है॥७६॥ गुरुदेव ही आदि और अनादि हैं, वही परम देव हैं। उनसे बढ़कर और कुछ भी नहीं। उन श्रीगुरु को नमन है॥७७॥ सप्त सागर पर्यन्त जितने भी तीर्थ उन सभी के स्नान का फल गुरुदेव के पादप्रक्षालन के जल बिन्दुओं का हजारवां हिस्सा भी नहीं है॥७८॥ यदि भगवान शिव स्वयं रुठ जायें तो श्री गुरु की कृपा से रक्षा हो जाती है, लेकिन यदि गुरु रुठ जाए तो कोई भी रक्षा करने में समर्थ नहीं होता। इसलिए सभी प्रकार से कृपालु सद्गुरु की शरण में जाना चाहिए॥७९॥ ब्रह्मा, विष्णु एवं शिव रूप यह जो जगत है- वह गुरुदेव का ही स्वरुप है। गुरुदेव से अधिक और कुछ भी नहीं है। इसलिए सब तरह से गुरुवर की अर्चना करनी चाहिए॥८०॥

सद्गुरु चेतना की महिमा का गायन करने वाले इन मंत्रों में आध्यात्मिक जीवन के कई रहस्यों की दुर्लभ झलकियाँ है। गुरुदेव

का ध्यान, उन्हीं की पूजा, उनके ही वाक्यों के अनुसार जीवन एवं उनकी ही कृपा से परम पद की प्राप्ति-यह साधना का सहज पथ है। वही सब कुछ है। इस सृष्टि में जो भी विस्तार है वह ब्राह्मी चेतना के साकार रूप गुरुदेव का ही है। गुरुदेव प्रसन्न हों तो काल को भी अपने पाँव पीछे लौटाने पड़ते हैं। जो शिष्य अपने सद्गुरु की कृपा छांव में रहता है, उसका भला कौन क्या बिगाड़ सकता है ? अपने शिष्य के जीवन के लिए ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश्वर गुरुदेव के सिवा और कोई भी नहीं। परम समर्थ एवं परम कृपालु गुरुदेव से अधिक शिष्य के लिए और कुछ भी नहीं है।

इस सत्य को बताने वाली एक बहुत ही प्यारी घटना है। जिसे जानकर शिष्यगणो को सहज ही गुरुदेव की महिमा का बोध होगा। यह सत्य घटना बंगाल के महान साधक सुरेन्द्र नाथ बनर्जी के बारे में है। बनर्जी महाशय उन दिनों सर्वेयर के पद पर कार्यरत थे। इस पद पर उनकी आमदनी तो ठीक थी। पर पारिवारिक जीवन समस्याओं से घिरा था। पहले बेटी का मरना फिर पत्नी का लम्बी बीमारी के बाद देहत्याग। इन विषमताओं ने उन्हें विचलित कर दिया था। ऐसे में उनकी मुलाकात के महान सन्त सूर्यानन्दगिरी से हुई। सुरेन्द्र नाथ के विकल मन ने सन्त की शरण छांव पाना चाहा। इसी उदेश्य से वह उन सन्यासी महाराज की कुटिया में गए और दीक्षा देने की प्रार्थना की।

इस प्रार्थना को सुनकर सन्यासी महाराज नाराज हो गए। और उन्हें डपटते हुए बोले- 'आज तक तुमने सत्कर्म किया है, जो मेरा शिष्य बनना चाहते हो। जाओ पहले सत्कर्म करो।' उनकी इस झिड़की को सुनकर सुरेन्द्रनाथ विचलित नहीं हुए और बोले- आज्ञा दीजिए महाराज! सन्यासी सूर्यानन्दगिरी ने कहा- इस संसार में पीड़ित मनुष्यों की संख्या कम नहीं है। उन पीड़ितों की सेवा करो। जो आज्ञा प्रभु! सुरेन्द्र नाथ ने कहा- मैंने सम्पूर्ण अन्तस से आपको गुरु माना है आपके

द्वारा कहा गया प्रत्येक वाक्य मेरे लिए मूलमंत्र है। आपके द्वारा उच्चारित प्रत्येक अक्षर मेरे लिए परा बीज है।

ऐसा कहकर सुरेन्द्रनाथ कलकत्ता चले आए। और अभावग्रस्त, लाचार, दु:खी मनुष्यों की सेवा करने लगे। उन्हें अस्पताल ले जाकर भर्ती करने लगे। निराश्रितों के सिरहाने बैठकर सेवा करते हुए वे गरीबों के मसीहा बन गए। धीरे-धीरे पास की सारी रकम समाप्त हो जाने पर वे कुली का काम करने लगे। उससे जो आमदानी होती, उससे अपाहिजों की सहायता करने लगे। ऐसी दशा में उनके कई वर्ष गुजर गए। इस बीच सन्यासी सूर्यानन्दगिरी से उनकी कोई मुलाकात नहीं हुई।

एक दिन जब वे कुली का काम करके जूट मिल से बाहर निकले तो देखा-कि सामने गुरुदेव खड़े हैं। प्रणाम करते हुए उन्होंने कहा- सुरेन्द्र तुम्हारी परीक्षा समाप्त हो गयी है, अब मेरे साथ चलो। इस आदेश को शिरोधार्य करके वे चुपचाप गुरु के पीछे-पीछे चल पड़े। गुरुदेव उन्हें बंगाल, आसाम पार कराते हुए बर्मा के जंगलों में ले गए। यही उनकी साधना का क्रम शुरु हुआ। गुरु कृपा से वह महान सिद्ध सन्त महानन्द गिरी के नाम से प्रसिद्ध हुए। परवर्ती काल में जब कोई उनसे साधना का रहस्य जानना चाहता तो वे एक ही बात कहते, 'मंत्र मूलं गुरोर्वाक्यं' गुरु वाक्य मूल मंत्र है। इसकी साधना से सब कुछ स्वयं ही हो जाता है। सचमुच ही गुरुदेव की महिमा अनन्त व अपार है।



चेतना के रहस्यों का जानकार होता है सद्गुरु

गुरुगीता अध्यात्मविद्या का परम दुर्लभ शास्त्र है। इस परम शास्त्र के प्रवर्तक भगवान् शिव का कथन है कि अध्यात्म साधना में परम अनिवार्य तत्त्व है '**गुरुभक्ति का जागरण**'। साधक में यदि गुरुभक्ति का विकास हो जाय तो अध्यात्म साधना सहज ही विकसित एवं फलित होने लगती है। साधक की निर्मल एवं निष्कपट भावनाएँ उसमें परिष्कृत चिन्तन को जन्म देती हैं। चिन्तन का परिष्कार होने से उसके कर्मों में उदात्तता आती है। तत्त्वकथा यही कहती है कि यदि भावनाएँ संवरती है तो ज्ञान एवं कर्म भी संवर जाते हैं। गुरुभक्ति यदि अन्तःकरण में पनप सके तो गुरुकृपा भी सहज ही अवतरित होती है। इस सद्गुरु कृपा के बल पर सहज ही आध्यात्मिक विभूतियों एवं यौगिक ऐश्वर्यों का स्वामी बन जाता है।

पिछले मंत्रों में यह बताया गया है कि परम पूज्य गुरुदेव की दिव्यमूर्ति ध्यान का मूल है। उनके चरण पूजा का मूल है। उनके वचन मंत्र मूल है। उनकी कृपा मोक्ष का मूल है। गुरुदेव ही आदि एवं अनादि हैं उनसे बढ़कर और कुछ भी नहीं। यहाँ तक कि गुरुदेव के पाद प्रक्षालन के जल बिन्दु में सभी तीर्थों का सार समावेश है। भगवान् शिव स्वयं कहते हैं कि मेरे रूठने पर तो सद्गुरु अपने शिष्य का त्राण करने में सक्षम हैं। परन्तु यदि वही रूठ जाएँ तो फिर कहीं भी त्रिलोकी में रक्षा नहीं हो सकती। इसलिए शिष्य को सदा अपने सद्गुरु की शरण में रहना चाहिए। उन्हीं की सब भाँति अर्चना-आराधना करनी चाहिए।

उन्हीं सर्वव्यापी गुरुदेव की चेतना के अन्य आध्यात्मिक रहस्यों को उजागर करते हुए भगवान् भोलेनाथ जगदम्बा पार्वती से कहते हैं-

ज्ञानं विज्ञानसहितं लभ्यते गुरुभक्तितः ।
गुरोः परतरं नास्ति ध्येयोऽसौ गुरुमार्गिभिः ॥ ८१ ॥
यस्मात्परतरं नास्ति नेति नेतीति वै श्रुतिः ।
मनसा वचसा चैव नित्यमाराधयेद् गुरुम् ॥ ८२ ॥
गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुसदाशिवाः ।
समर्थाः प्रभवादौ च केवलं गुरुसेवया ॥ ८३ ॥
देवकिन्नरगन्धर्वाःपितरो यक्षचारणाः ।
मुनयोपि न जानन्ति गुरुशुश्रूषणे विधिम् ॥ ८४ ॥
महाहंकारगर्वेण तपोविद्याबलान्विताः ।
संसारकुहरावर्ते घटयंत्रे यथा घटाः ॥ ८५ ॥

गुरुदेव की भक्ति से ज्ञान-विज्ञान साहित सब कुछ अपने आप मिल जाता है। उन सद्गुरु से श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। इसलिए उन्हीं के बताए मार्ग का ध्यान करना चाहिए ॥८१ ॥ जिनसे श्रेष्ठ और कुछ भी नहीं है। श्रुतियों में इन्हीं की पराचेतना को नेति-नेति कहकर निरूपित किया गया है। इसलिए मन और वाणी से इन्हीं सद्गुरु की आराधना नित्य करते रहना चाहिए ॥८२ ॥ ब्रह्मा, विष्णु और सदाशिव गुरुकृपा के प्रभाव से ही समर्थ हुए हैं। इसलिए गुरुसेवा को ही अपना कर्तव्य मानना चाहिए ॥८३ ॥ हालांकि गुरु सेवा की ठीक-ठीक विधि कोई भी नहीं जानता। फिर भले ही वह देव, किन्नर, गन्धर्व, पितर, यक्ष, चारण अथवा श्रेष्ठ मुनि ही क्यों न हों ? ॥८४ ॥ तप और विद्या को सब कुछ समझने वाले अहंकारी जन इस संसार चक्र में बारम्बार भटकते रहते हैं। जैसे कि घट यंत्र के चक्र में घट घूमता रहता है ॥८५ ॥

गुरुदेव की पराचेतना में सब कुछ है। उन्हीं में सभी लौकिक एवं अलौकिक शक्तियाँ समाहित हैं। इसी सत्य को भगवान् सदाशिव

ने आदि माता पार्वती से कहा है। सद्गुरु अगम एवं अगोचर हैं। वे साकार होते हुए भी निराकार हैं। देहधारी होते हुए भी देहातीत हैं। उन्हीं में अपनी अहंता को विलीन करने से परमज्ञान मिलता है। यह परम सत्य है। भले ही इसे बुद्धि परायण जन समझे अथवा न समझे। हालांकि इसे समझे बिना तप की कठिन साधनाएँ एवं दुरूह विद्याओं का अभ्यास अज्ञान के अहंकार को ही बढ़ाता है।

इस सच्चाई को बताने वाली एक बड़ी मीठी कथा है। यह कथा बाबा कबीर और उनके शिष्य पद्मनाभ के बारे में है। ये पद्मनाभ कबीर बाबा के पास अध्यात्म के तत्त्व को जानने आए थे। उनकी सच्ची जिज्ञासा को देखकर कबीर ने उन्हें शिष्य के रूप में अपना लिया। पर पद्मनाभ का मन उनके पास नहीं लगता था। उनकी मानसिकता के ढाँचे में कबीर फिट नहीं बैठते थे। सो वह एक दिन फकीर शेखतकी के पास चले गए। ये शेखतकी सुप्रसिद्ध विद्वान थे। सभ्य जनों में उनका बड़ा रूतबा था। यहाँ तक कि हिन्दुस्तान का बादशाह सिकन्दर लोदी भी उनके यहाँ हाजरी बजाने आता था। इतना बड़ा मर्तबा, किताबों और किताबी ज्ञान के अम्बार में पद्मनाभ खो गए।

जब उन्होंने शेखतकी से साधना करने की इच्छा जताई तो उन्होंने उत्तर में एक मोटी सी किताब उन्हें थमा दी। इस किताब को पढ़कर पद्मनाभ अपनी साधना करने लगे। जैसा-जैसा किताब में लिखा था, वह वैसा ही करते। उसी तरह से प्राणायाम, उसी तरह से मुद्राएँ एवं उसी भाँति से वह योग की दूसरी क्रियाएँ साधने लगे। यह सब करते हुए उन्हें कई साल बीत गए। यहाँ तक कि उन्हीं कबीर बाबा की सुधि भी न रही। तभी एक दिन उनकी योग साधना में एक व्यतिरेक हुआ और उनकी काया निश्चेष्ट हो गयी। कुछ इस तरह उनके साथ घटा जैसे कि वे मर गए हों।

सभी ने उन्हें मृत मान लिया। फकीर शेखतकी ने उन्हें मरा हुआ

मानकर गंगा में बहाने लगे। तभी अचानक बाबा कबीर उधर से गुजरे। लोगों ने उन्हें सारा वाकया बताया। सारी बातें जानकर वह मुस्कराए और पास खड़े लोगों से उन्होंने कहा कि पद्मनाभ का मृत शरीर मेरे पास रख दो। पर इससे होगा क्या? शेखतकी ने प्रतिवाद करते हुए कहा- यह तो मर गया है। बाबा कबीर ने कहा- नहीं यह मृत नहीं है। इस बेचारे ने प्राणवायु को ऊपर तो चढ़ा लिया- पर उतार नहीं सका।

शव के पास आने पर कबीर बाबा ने उसके शरीर को सहलाते हुए मस्तिष्क की नसों को दबाया। उसकी प्राणवायु को ब्रह्मरन्ध्र से उतार कण्ठ में ले आए। इससे उसकी कुण्डलिनी क्रिया शुद्ध हो गयी। अब वह अंगड़ाई लेकर उठ गया। चारों ओर देखते हुए उसने पूछा कि मैं यहाँ कैसे आ गया। कबीर बाबा ने धीरे से उसके मस्तक को सहलाया। इस जादू भरे स्पर्श में पता नहीं क्या था कि उसे जीवन सत्य का बोध हो गया।

अब तो वह उनके पाँव पकड़ कर रोने लगा। और बोला- बाबा मैंने आपका बड़ा अपमान किया, पर आपने मुझे उबार लिया। उसकी इन बातों पर कबीर बोले- बेटा! कोई गुरु अपने शिष्य से न तो कभी अपमानित होता है और न ही वह उसका त्याग करता है। बस उसे कालक्रम की प्रतीक्षा होती है। कबीर की इस रहस्यवाणी ने शेखतकी की आँखें खोल दी। उन्हें ज्ञात हुआ कि किताबों को पढ़ने वाला गुरु नहीं होता। गुरु तो वह है, जो चेतना के रहस्यों का जानकार है और उसमें अपने शिष्य को उबारने की क्षमता है।



श्री सद्गुरु शरणं मम

गुरुगीता गुरुभक्ति की गंगोत्री है। यहाँ से प्रवाहित होने वाली गुरुभक्ति की गंगा जब शिष्यों के अन्तःकरण में प्रवेश करती है, तो उनके जन्म-जन्मान्तर के पापों का शमन होता है। साठ हजार सगर पुत्रों की आत्मशक्ति की ही भाँति यह भक्ति गंगा भी असंख्य शिष्यों के त्रिविध तापों को शान्त करती है। यह भक्ति गंगा सब भांति कष्मषहारी है। शिष्य-साधक के कषाय-कल्मष इसके भक्ति जल में धुलते हैं। शिष्यों का अन्तर्मन इसके जल में धुल कर धवल होता है। इसे वे सभी अनुभव करते हैं जो अपने आपको सच्चा शिष्य सिद्ध करने के लिए प्राण-प्रण से बाजी लगाए हुए हैं। इनकी एक ही टेर रहती है कि प्राण भले ही जाए पर किसी भी भाँति उनका शिष्यत्व कलंकित न होने पाए।

शिष्यत्व की कसौटी पर अपने आप को खरा साबित करने के लिए इस गुरुभक्ति कथा के पूर्व मंत्र में बताया गया है कि गुरुदेव की भक्ति ही सार है। उनकी भक्ति से ज्ञान-विज्ञान सभी कुछ मिल जाता है। श्रुतियों में उन्हीं प्रभु की पराचेतना का निरुपण हुआ है। इसलिए मन और वाणी से उन्हीं सद्गुरुदेव की आराधना करते रहना चाहिए। गुरुसेवा को कमतर मानकर तप और विद्या को सब कुछ मानने वाले भले ही कुछ भी पा लें, लेकिन संसार चक्र से उनका छुटकारा नहीं हो पाता। इसीलिए सद्गुरु के शरणापन्न बने रहना ही साधना जीवन की सर्वोच्च कसौटी है।

इस सत्य को और भी स्पष्ट करते हुए भगवान महेश्वर आदि माता शैलसुता पार्वती से कहते हैं-

न मुक्ता देवगंधर्वाः पितरो यक्षकिन्नराः।
ऋषयः सर्वसिद्धाश्च गुरुसेवापराङ्मुखाः॥ ८६॥
ध्यानं शृणु महादेवि सर्वानन्दप्रदायकम्।
सर्वसौख्यकरं नित्यं भुक्तिमुक्तिविधायकम्॥ ८७॥
श्रीमत्परब्रह्म गुरुं स्मरामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं वदामि।
श्रीमत्परब्रह्म गुरुं नमामि श्रीमत्परब्रह्म गुरुं भजामि॥८८॥
ब्रह्मानंदं परमसुखदं केवलं ज्ञानमूर्तिं
द्वन्द्वातीतं गगनसदृशं तत्त्वमस्यादि लक्ष्यम्।
एकं नित्यं विमलमचलं सर्वधीसाक्षिभूतं
भावातीतं त्रिगुणरहितं सद्गुरुं तं नमामि॥ ८९॥
नित्यं शुद्धं निराभासं निराकारं निरंञ्जनम्।
नित्यबोधं चिदानन्दं गुरुं ब्रह्म नमाम्यहम्॥ ९०॥

देव हों या गन्धर्व, पितर, यक्ष, किन्नर, सिद्ध अथवा ऋषि कोई भी हों गुरु सेवा से विमुख होने पर उन्हें कदापि मोक्ष नहीं मिल सकता है॥ ८६॥ भगवान् भोलेनाथ कहते हैं, हे महादेवि! सुनो, गुरुदेव का ध्यान सभी तरह के आनन्द का प्रदाता है। यह सभी सुखों को देने वाला है। यह सांसारिक सुख भोगों को देने के साथ मोक्ष को भी देता है॥ ८७॥ सच्चे शिष्य को इस सत्य के लिए संकल्पित रहना चाहिए- कि मैं गुरुदेव का स्मरण करूँगा, गुरुदेव की स्तुति-कथा कहूँगा। परब्रह्म की चेतना का साकार रूप श्री गुरुदेव की वाणी, मन और कर्म से सेवा आराधना करूँगा॥ ८८॥ श्री गुरुदेव ब्रह्मानन्द का परम सुख देने वाली साकार मूर्ति हैं। वे द्वन्द्वातीत चिदाकाश है। तत्त्वमसि आदि श्रुति वाक्यों का लक्ष्य वही है। वे प्रभु एक, नित्य, विमल, अचल एवं सभी कर्मों के साक्षी रूप हैं। श्री गुरुदेव सभी भावों से परे, प्रकृति के तीनों गुणों से सर्वथा रहित हैं। उन्हें भावपूर्ण नमन है॥ ८९॥ श्री गुरुदेव नित्य, शुद्ध, निराभास, निराकार एवं माया से परे हैं। वे

नित्यबोधमय एवं चिदानन्दमय हैं। उन परात्पर ब्रह्म गुरुदेव को नमन है॥ ९०॥

गुरुगीता के इन महामन्त्रों के सार को अपनी चौपाई में बांधते हुए तुलसी बाता मानस में कहते हैं-

जो विरंचि संकर सम होई।
गुरु बिन भवनिधि तरै न कोई॥

यानि कि ब्रह्मा एवं शिव की भाँति समर्थ होने पर भी श्री गुरुदेव का आश्रय पाए बिना इस भवसागर को कोई पार नहीं कर सकता है। शिष्यों को साधकों को यह सत्य भली भाँति आत्मसात कर लेना चाहिए कि अध्यात्म तत्त्व गुरुगम्य है। श्री गुरु के बिना तप तो किया जा सकता है, सिद्धियाँ तो पायी जा सकती हैं, चमत्कार तो दिखाए जा सकते हैं, पर अध्यात्म के सत्य को गुरु के आशीष के बिना नहीं पाया जा सकता। गुरु कृपा के बिना आत्म तत्त्व का ज्ञान नितान्त असम्भव है।

इस सच्चाई को उजागर करने वाला एक बहुत ही प्रेरक प्रसंग है। टी.वी. कापालि शास्त्री दक्षिण भारत के बहुत ही उद्भट विद्वान् थे। वेदों के महापण्डित के रूप में उनकी ख्याति थी। वेदविद्या के साथ तन्त्र के महासाधक के रूप में सभी उनको जानते थे। सिद्धियाँ उनकी चेरी थी, औ चमत्कार उनके अनुचर। अनेकों भक्तों का जमघट उन्हें घेरे रहता था। जिनमें से कुछ सच्चे जिज्ञासु भी थे। इन सच्चे जिज्ञासु शिष्यों में एक एम.पी. पण्डित थे। जिन्होंने बाद के दिनों में प्रख्यात् मनीषी के रूप में महती ख्याति अर्जित की।

तप, विद्या एवं सिद्धियों के धनी कापालि शास्त्री के पास सब कुछ था सिवा अध्यात्म तत्त्व के गूढ़ रहस्यों के। यह अभाव उन्हें हमेशा सालता। एक दिन उन्होंने बड़े कातर भाव वे तन्त्र महाविद्या की अधिष्ठात्री माता जगदम्बा से प्रार्थना की, माँ मुझे राह दिखा। वरदायिनी माता अपनी इस तपस्वी सन्तान पर कृपालु हुई और उन्होंने कहा,

सद्‌गुरु की शरण में जा। वही तेरा कल्याण करेंगे। माँ कौन है मेरे सद्‌गुरु ? इस प्रश्न के उत्तर में माँ की परा वाणी गूँजी- पाण्डिचेरी में तप कर रहे महायोगी श्री अरविन्द तेरे सद्‌गुरु हैं।

माँ जगदम्बा का आदेश पाकर टी.वी. कापालि शास्त्री अपने सुयोग्य शिष्य एम.पी. पण्डित के साथ श्री अरविन्द आश्रम पहुँच गए। महान् विद्वान, परम तपस्वी, अनगिनत अलौकिक सिद्धियों से सम्पन्न इस महासाधक को देखकर आश्रमवासी चकित थे। वह स्वयं जब महर्षि के सम्मुख पहुँचे, तो महर्षि मुस्कराए और बोले, शास्त्री मेरे पास क्यों आए हो ? कापालि शास्त्री ने विनम्रतापूर्वक कहा, हे प्रभु तप, विद्या आदि की जो क्षुद्रताएँ मेरे पास है, वही अज्ञान सम्पदा आपके चरणों में अर्पित करने आया हूँ। यह कहते हुए उन्होंने अपना हृदय श्री अरविन्द के चरणों में उड़ेल दिया। शास्त्री जी के साथ एम. पी. पण्डित ने भी उनका अनुसरण किया। वेद और तन्त्र मार्ग की सारी साधनाओं को कर चुके कापालि शास्त्री अब एक ही साधना में जुट गए और वह साधना थी 'श्री सद्‌गुरु शरणं'। इस साधना ने उन्हें आध्यात्मिक जीवन की परम पूर्णता दी।



गुरु ही इष्ट है, इष्ट ही गुरु है

गुरुगीता के मंत्र शिष्यों के अन्तर्मन को कषाय-कल्मष से मुक्त करते हैं। इसमें भक्ति की धारा बहाकर सद्‌गुरु की भावचेतना से जोड़ते हैं। शिष्य का अन्तर्मन जब तक कलुषित है, कल्मष से लथ-पथ है। तब तक उसे सद्‌गुरु की सत्ता का सार्थक बोध नहीं हो पाता। यहाँ तक कि लौकिक-सांसारिक दृष्टि से उनके पास रहकर आध्यात्मिक दृष्टि से वह उनसे कोसों दूर रहता है। देह की दृष्टि से भले ही वह गुरुदेव से कितना ही नजदीक रहे, पर आत्मा की दृष्टि से उनसे अपरिचित बना रहता है। यह अपरिचय-परिचय में बदले। परिचय प्रगाढ़ता में परिवर्तित हो और प्रगाढ़ता पवित्र भावनाओं में बदल जाय इसके लिए गुरुगीता के मंत्रों की साधना सर्वोत्तम उपाय है।

शिष्यों के मन के मैल को धोने वाली गुरुगीता के पूर्व मंत्र में चेताया गया है कि देव, यक्ष, किन्नर, गन्धर्व कोई भी गुरु से विमुख होने पर किसी को मोक्ष नहीं मिलता। भगवान् शिव के वचन हैं कि गुरुदेव का ध्यान सभी तरह के आनन्द का प्रदाता है। इससे सांसारिक सुखों के साथ मोक्ष की प्राप्ति भी होती है। इसलिए प्रत्येक शिष्य का यह पावन संकल्प होना चाहिए कि मैं अपने सद्‌गुरु का ध्यान करूँगा। ये गुरुदेव ब्रह्मानन्द का परम सुख देने वाले, द्वन्द्वातीत एवं सभी भावों से परे हैं। ये प्रभु नित्य, शुद्ध, निराभास, निराकार एवं माया से परे हैं। उन्हें मेरा नित्य नमन है।

अपने इन कृपालु सद्‌गुरु को किस भाँति ध्यायें? किस तरह उनकी धारणा करें? इस साधना विधान को स्पष्ट करते हुए भगवान् सदाशिव माता भवानी से कहते हैं-

हृदम्बुजे कर्णिकमध्यसंस्थे
सिंहासनेसंस्थितदिव्यमूर्तिम्।
ध्यायेद्गुरुं चन्द्रकलाप्रकाशं
चित्पुस्तकाभीष्टवरं दधानम्॥ ९१ ॥
श्वेताम्बरं श्वेतविलेपपुष्पं
मुक्ताविभूषं मुदितं द्विनेत्रम्।
वामांङ्कपीठस्थितदिव्यशक्तिं
मन्दस्मितं सांद्रकृपानिधानम्॥ ९२ ॥

(शिष्य धारणा करें) उसके हृदय कमल की कर्णिकाओं के बीच स्थित सिंहासन में गुरुदेव की दिव्यमूर्ति विराजमान है। इस दिव्यमूर्ति से शुभ्र चाँदनी सा प्रकाश विकीर्ण हो रहा है। इन सद्गुरुदेव के एक हाथ में पुस्तक है और दूसरा हाथ वर प्रदान करने की मुद्रा में ऊपर उठा है ॥ ९१ ॥ सद्गुरुदेव श्वेतवस्त्र पहने हुए हैं, उन्होंने श्वेत लेप धारण किया है। वे श्वेत पुष्प एवं मोतियों की माला से अलंकृत हैं। उनके दोनों नेत्रों से आनन्द छलक रहा है। उनके वामभाग में उनकी लीला सहचरी दिव्य शक्ति माँ विद्यमान हैं। ऐसे मधुर मधुमय मुस्कान बिखेरने वाले गुरुदेव का ध्यान करना चाहिए॥९२॥

गुरुगीता के इन मंत्रों में सद्गुरु के ध्यान की विशिष्ट विधि है। इस विधि का एक खास मकसद है। जिसे ध्यान के सूक्ष्म ज्ञाता जान सकते हैं। जो ध्यान के अर्थ व सत्य से परिचित हैं वे जानते हैं कि ध्यान मात्र एकाग्रता नहीं है। यह आत्मशोधन की प्रक्रिया के साथ अपनी कल्पनाओं व कामनाओं के अनुसार ब्रह्माण्डीय ऊर्जा के नियंत्रण व नियोजन की विधि है। हमारी चाहत क्या है? इसी के अनुसार ध्यान का विधान तय किया जाता है। ध्यान के उग्र रूप शत्रु संहार के लिए होते हैं। ध्यान में राजस भाव की प्रगाढ़ता वैभव एवं समृद्धि देती है। ध्यान का परम सात्त्विक सौम्य रूप ज्ञान देने वाला होता है। गुरुगीता में वर्णित इस ध्यान विधि में सात्त्विक एवं राजस

रूप का मिश्रित भाव है। गुरुदेव के श्वेत वस्त्र सात्विक भाव को प्रगाढ़ करते हैं, किन्तु उनका मोतियों की माला एवं पुष्प से अलंकृत स्वरूप राजस भाव की वृद्धि करता है। इन दोनों भावों के मिश्रण से ध्यान का यह स्वरूप ज्ञान व मोक्ष देने के साथ लौकिक व सांसारिक ऐश्वर्य को भी देने वाला है।

बंगाल में एक सन्त हुए अवधूत तारानाथ, इन्होंने ध्यान की अलग-अलग तकनीकों का विकास किया है। अवधूत तारानाथ महान् योगी होने के साथ उच्चकोटि के तंत्र साधक भी थे। उन्होंने तंत्र एवं योग के मिश्रण से ध्यान साधना पर गम्भीर अन्वेषण किए। उनका कहना था कि एक देवता के सैकड़ों- सहस्रों मंत्र होते हैं। कामना, कल्पना एवं संकल्प की दृष्टि से प्रत्येक मंत्र देवता के स्वरूप एक भिन्न आयाम को प्रकाशित-परिभाषित करता है। इनमें से साधक अपनी साधना के लिए जिस भी मंत्र का चयन करता है, उस मंत्र की प्रकृति के अनुरूप उसमें योग के ऐश्वर्य का विकास होता है।

ध्यान के सम्बन्ध में भी यही यथार्थ है। एक ही देवता के विविध ध्यान होते हैं। जो साधक की अलग-अलग भावनाओं एवं विचारों को मूर्त करते हैं। अवधूत तारानाथ सभी तरह की ध्यान प्रक्रिया में गुरु ध्यान को विशेष महत्ता देते थे। उनका कहना था कि गुरुदेव सर्वदेव, देवीमय हैं। उनके ध्यान से सभी का ध्यान हो जाता है। साधक के जीवन में सारे सुफल आ जाते हैं। उन्होंने स्वयं अपनी साधना इसी विधि से सम्पन्न की। उनका जन्म बंगाल के एक गांव में हुआ था। जन्म के थोड़े दिनों में ही उनके माता-पिता का देहान्त हो गया। अनाथ बालक बेचारा असहाय की भाँति इधर-उधर भटकने लगा।

तभी उनकी भेंट माँ तारा के परम भक्त वामाखेपा से हुई। वामाखेपा की चेतना सदा मां में लीन रहती थी। उनकी दृष्टि जब इस बालक पर पड़ी तो उन्होंने इसे माँ की शरण में जाने की सलाह दी।

पर इस अनाथ बालक को अपना सब कुछ इन्हीं में नजर आया। उन्होंने बड़े ही सरल भाव से कहा- बाबा आपके लिए सब कुछ माँ हैं। पर मेरे लिए मेरे सब कुछ आप हैं। मैं आपकी ही शरण में आऊँगा। बालक की इन भोली बातों पर वामाखेपा हँस दिए। पर उस बालक ने वामाखेपा को अपना गुरुदेव एवं ईष्ट सब कुछ मान लिया।

मां तारा के मन्दिर से थोड़ी दूर पर उसने अपनी साधना प्रारम्भ कर दी। गुरु का ध्यान, उनका चिन्तन एवं गुरु की सेवा। कर्म, विचार व भावनाओं का प्रवाह नित्य निरन्तर सद्‌गुरु की दिशा में बह चला। वृत्तियाँ गुरुदेव में तदाकार होने लगीं। एक कार्तिक पूर्णिमा की रात्रि को जब आकाश में पूर्णचन्द्र उदित था। अवधूत तारानाथ के अन्तर्गगन में भी पूर्णिमा का चन्द्र उदित हो गया। स्वयं वामाखेपा उसके अन्तराकाश में हँस रहे थे। उनकी परावाणी के स्वर अवधूत तारानाथ के कण-कण में समा रहे थे- बेटा! गुरु ही ईष्ट है, ईष्ट ही गुरु है। गुरु के ध्यान से सब कुछ मिल जाता है। यही सच है। सद्‌गुरु की यह कृपा अवधूत तारानाथ के जीवन में घनीभूत हो गयी। उन्हें अपनी गुरु-भक्ति से साधना जीवन का सार मिल गया।



एक ही यज्ञ-अहं को भष्म कर देना

गुरुगीता के महामंत्रों की साधना से शिष्य के अस्तित्त्व का सद्‌गुरु की चेतना में लय होता है। अध्यात्म जगत् में यह अनुभूति बड़ी दुर्लभ है। और यह किसी को यूं ही नहीं मिल जाती। इसके पहले शिष्य कोअ संख्य-अनगिनत परीक्षाओं से गुजरना पड़ता है। प्रत्येक परीक्षा उसके अहं पर संघातिक प्रहार करती है। इस बज्रआघात की पीड़ा जिसने सही है, वही जान सकता है। इस तरह का प्रत्येक आघात शिष्य के समर्पण के समक्ष महाचुनौती खड़ी करता है। ऐसी असंख्य चुनौतियों का सक्षम उत्तर विरले ही दे पाते हैं। अन्यथा बाकी तो बुद्धि के तर्कों एवं मन द्वारा खड़े किए गए उपद्रवों के सामने हथियार डाल देते हैं। उनके हाथ-पाँव अनायास ही फूल जाते हैं। और समर्पण पथ से विचलित हो पलायन कर बैठते हैं। आध्यात्मिक साधना की समरभूमि ऐसे अनेकों पलायनवादियों की कायरता की साक्षी रही है।

समर्पण के भाव बने रहें, शिष्य का अस्तित्त्व सद्‌गुरु की चेतना में घुलता रहे इसके लिए परम पूज्य गुरुदेव के ध्यान की सातत्य हमेशा बना रहना चाहिए। इसी ध्यान के बारे में ऊपर के मंत्रों में शिष्यों ने पढ़ा कि भगवान् शिव माता पार्वती से कहते हैं कि शिष्यत्व की साधना करने वालों को अपने हृदय कमल की कर्णिकाओं के बीच गुरुदेव की दिव्य भावमूर्ति का ध्यान करना चाहिए। भाव यह रहे कि उनकी दिव्य मूर्ति से शुभ्र चाँदनी सा प्रकाश विकीर्ण हो रहा है। ये सद्‌गुरु देव अपने शिष्यों के लिए वरदायी मुद्रा में आसीन हैं। उनके वामभाग में उनकी लीला सहचरी दिव्य शक्ति माँ विद्यमान हैं।

ध्यान की इस पवित्र प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए भगवान् भोलेनाथ माता जगदम्बा से कहते हैं-

आनन्दमानन्दकरं प्रसन्नं ज्ञानस्वरूपं निजबोधयुक्तम्।
योगीन्द्रमीडयं भवरोगवैद्यं श्रीमद्गुरुंनित्यमहम् नमामि ।।९३
यस्मिन् सृष्टिस्थितिध्वंसनिग्रहानुग्रहात्मकम्।
कृत्यं पंञ्चविधं शश्वद्भासते तं नमाम्यहम्॥ ९४॥
प्रातः शिरसि शुक्लाब्जे द्विनेत्रं द्विभुजं गुरुम्।
वराभययुतं शान्तं स्मरेत्तं नामपूर्वकम्॥ ९५॥

गुरुदेव आनन्दमय रूप हैं। वे शिष्यों को आनन्द प्रदान करने वाले हैं। वे प्रभु प्रसन्नमुख एवं ज्ञानमय हैं। वे सदा आत्मबोध में निमग्न रहते हैं। योगीजन सदा उनकी स्तुति करते हैं। संसार रूपी रोग के वही एक मात्र वैद्य हैं। मैं उन गुरुदेव का नित्य नमन करता हूँ॥ ९३॥ जिनकी चेतना में उत्पत्ति, स्थिति, ध्वसं, निग्रह एवं अनुग्रह ये पाँच कार्य सदा होते रहते हैं, उन गुरुदेव को मेरा नमन है॥ ९४॥ इस भाव से गुरुदेव को नमन करते हुए प्रातः काल सहस्त्रारदल कमल में शान्त, वराभय मुद्रा वाले, कृपा-करूणा रूपी दोनों नेत्रों वाले, रक्षण-पोषझा रूपी दो भुजाओं वाले गुरुदेव का नाम सहित स्मरण करना चाहिए॥ ९५॥

गुरुगीता के इन मंत्रों में सद्गुरु स्मरण एवं उनके ध्यान की महिमा है। गुणों के बिना स्मरण एवं रूप के बिना ध्यान आसान नहीं है। इसलिए शिष्यों को अपने गुरुदेव के नाम का स्मरण उनके गुणों के चिन्तन के साथ करना चाहिए। इसी तरह उन प्रभु का ध्यान उनके स्वयप को याद करते हुए भक्तिपूर्वक करना चाहिए। शिष्य के जीवन में यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहनी चाहिए। ऐसा होते रहने पर शिष्य का अस्तित्त्व स्वयं ही गुरुदेव की चेतना में घुलता रहता है। जिन्होंने ऐसा किया है- या फिर कर रहे हैं, वे इससे होने वाली अनुभूतियों व उपलब्धियों के स्वाद से परिचित हैं।

ऐसे ही एक सिद्ध तपस्वी हुए हैं बाबा माधवदास। गंगा किनारे बसे गाँव वेणुपुर में उन्होंने गहन साधना की। गाँव वाले उनके बारे में बस इतना बता पाते हैं कि बाबा जब गाँव में आए थे तब उनकी आयु लगभग ४० साल की रही होगी। सामान के नाम पर उनके पास कुछ खास था नहीं। बस आए और गाँव के बाहर पीपल के पेड़ के नीचे जम गए। बाद में गाँव वालों ने उनके लिए कुटिया बना दी। बाबा माधवदास की एक ही साधना थी गुरुभक्ति। इसी ने उन्हें साधना के शिखर तक पहुँचाया था। जब तक उनके गुरुदेव थे उन्होंने उनकी सेवा की। उनकी आज्ञा का पालन किया। बाद में उनके शरीर छोड़ने पर उन्हीं की आज्ञा से इस गाँव में चले आए।

चर्चा में गाँव वालों को उन्होंने बताया कि उनके गुरुदेव कहा करते थे कि साधु पर भी समाज का ऋण होता है। सो उसे चुकाना चाहिए। क्या ही अच्छा हो कि एक-एक साधु एक-एक गाँव में जाकर ज्ञान की अलख जगाए। गाँव के लोगों को शिक्षा और संस्कार दे। उन्हें आध्यात्मिक जीवन दृष्टि प्रदान करे। अपने गुरु के आदेश के अनुसार से सदा इन्हीं कामों में लगे रहते थे। जब गाँव वाले उनसे पूछते कि वह इतना परिश्रम क्यों करते हैं- तो वे कहा करते कि गुरु का आदेश मानना ही उनकी सच्ची सेवा होती है। बस मैंने सारे जीवन उनके आदेश के अनुसार ही जीने का संकल्प लिया है।

बाबा माधवदास वेणुपुर में लोगों से कहा करते थे, श्रद्धा का मतलब है-समर्पण। यानि कि निमित्त मात्र हो जाना। मन में इस अनुभूति को बसा लेना कि मैं नहीं तू। गुरुभक्ति का मतलब है कि हे गुरुदेव अब मैंने स्वयं को समाप्त कर दिया है, अब तुम आओ और मेरे हृदय में विराजमान हो जाओ। अब मैं वैसे ही जीऊँगा जैसे कि तुम जिलाओगे। अब मेरी कोई मरजी नहीं, तुम्हारी मरजी ही मेरी मरजी है। माधवदास जैसा कहते थे वैसा ही उनका जीवन भी था। उनका

कहना था कि शिष्य जिस दिन अपने आप को शव बना लेता है, उसी दिन उसके गुरुदेव उसमें प्रवेश कर उसे शिव बना देते हैं।

जिस क्षण शिष्य का अस्तित्त्व मिट जाता है, उसमें सद्गुरु प्रकट हो जाते हैं। फिर सारी साधनाएँ स्वयं होने लगती हैं। सभी तप स्वयं होने लगते हैं। शिष्य को यह बात हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि सत्कर्म एक ही है, जिसे हमने न किया हो, बल्कि हमारे माध्यम से स्वयं गुरुदेव ने किया हो। जो भक्ति अहंकार को लेकर बहता है वह कभी पवित्र नहीं हो सकता। उसके प्रवाह के सान्निध्य में कभ तीर्थ नहीं बन सकते। शिष्य के करने लायक एक ही यज्ञ है- अपने अहं को भस्म कर देना। समझने की बात यह है कि धूप में खड़े होना अथवा भूखे मरने का नाम तपस्या नहीं है, यह तो स्वयं को मिटाने का साहस है। यही तपस्या करता है। शिष्य धर्म को निभाने वाले बाबा माधवदास सारे जीवन यही तप करते रहे। इसी महातप से उनका अस्तित्त्व जन-जन के लिए वरदान बन गया। पर यदि कोई उनसे उनकी उपलब्धियों की बात करते, तो वे हँस पड़ते और कहते और मैं हूँ ही कहाँ ये तो गुरुदेव हैं जो इस शरीर को चला रहे हैं और अपने कर्म कर रहे हैं। इस सत्य के नूतन आयामों को अगले मंत्रों में स्पष्ट किया गया है।



सहस्त्रदल कमल पर सद्‌गुरु की दिव्यमूर्ति का ध्यान

गुरुगीता के महामंत्रों में सद्‌गुरु के ध्यान का संगीत है। इसकी सुरीली सरगम से एकाग्रता, स्थिरता, शान्ति एवं पवित्रता की धुने रची जाती हैं। इसके प्रभाव से व्यक्तित्व की अन्तर्निहित शक्तियों को अपनी सार्थक अभिव्यक्ति मिलती है। शिष्य-साधक ज्यों-ज्यों अपने सद्‌गुरु के ध्यान में डूबता है, त्यों-त्यों उसकी भाव चेतना गुरुप्रेम में भीगती जाती है। वह अपने प्यारे सद्‌गुरु के रंग में रंगता चल जाता है। यह अनुभूति ऐसी है, जिसे केवल पाने वाला अनुभव करता है। इसे न तो कहा जा सकता है और न बताया जा सकता है। ध्यान के रूप और रंग कई है। इसकी विधियाँ और तकनीकें कई है। इनमें से सभी का अपना विशेष प्रभाव है। लेकिन सद्‌गुरु के ध्यान की भावदशा कुछ और ही है। इसके प्रभाव की रूप छटा के रंग ही निराले हैं।

इन्हीं में से कुछ रंगों की कथा पिछले मंत्रों में कही गयी है। शिष्यों को यह बोध कराया गया कि गुरुदेव आनन्दमय रूप हैं। उनसे शिष्यों को आनन्द मिलता है। वे प्रभु प्रसन्नमुख एवं ज्ञानमय है। वे सदा ही आत्मबोध में निमग्न रहते हैं। योगीजन सदा उनकी स्तुति करते हैं। संसार रोग के एक मात्र वैद्य उन गुरुदेव की स्तुति मैं करता हूँ। उन गुरुदेव को मेरा नित्य नमन है, जिनकी भाव चेतना में उत्पत्ति, स्थिति, ध्वंस, निग्रह एवं अनुग्रह का सिलसिला सदा चलता रहता है। इसी समर्पण भरी भक्ति से अपने सहस्त्रदल कमल में गुरुदेव का स्मरण, ध्यान करना चाहिए।

ध्यान की इस भाव भरी प्रक्रिया को आगे बढ़ाते हुए भगवान् सदाशिव पराम्बा माँ भवानी से कहते हैं-

न गुरोरधिकं न गुरोरधिकं
न गुरोरधिकं न गुरोरधिकम्।
शिवशासनतः शिवशासनतः
शिवशासनतः शिवशासनतः॥ ९६॥
इदमेव शिवं त्विदमेवशिदं
त्विदमेव शिवं त्विदमेव शिवम्।
मम शासनतो मम शासनतो
मम शासनतो मम शासनतः॥ ९७॥
एवं विधं गुरुं ध्यात्वा ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्।
तत्सद्गुरुप्रसादेन मुक्तोऽहमिति भावयेत्॥ ९८॥

गुरुदेव के अधिक कुछ नहीं है। गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है। गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है। गुरुदेव से अधिक कुछ नहीं है। यह शिव का आदेश है। यह शिव का आदेश है। यह शिव का आदेश है। यह शिव का आदेश है॥ ९६॥ भगवान् शिव कहते हैं- यह गुरु तत्त्व कल्याणकारी है। यह कल्याणकारी है। यह कल्याणकारी है। यह कल्याणकारी है। यह मेरा आदेश है। यह मेरा आदेश है। यह मेरा आदेश है। यह मेरा आदेश है॥ ९७॥ इस तरह (पिछली कड़ी में बतायी गयी) विधि से गुरुदेव का ध्यान करने से स्वतः ही ज्ञान उत्पन्न होता है। उन कृपालु सद्गुरु की कृपा से 'मैं मुक्त हूँ' ऐसा चिन्तन करना चाहिए॥ ९८॥

गुरुगीता के इन मंत्रों में सद्गुरु के ध्यान की फलश्रुति बतायी गयी है। यह ध्यान प्रक्रिया वही है जिसकी कथा पिछली कड़ी में कही गयी थी। यह ध्यान अतिविशिष्ट है। इस ध्यान से सद्गुरु के सदाशिव होने का अनुभव मिलता है। और यह अनुभव कहता है कि गुरु से अधिक और कुछ नहीं है। यही परम कल्याणकारी है। शिव के इस आदेश व उपदेश की सार्थकता उन्हें अनुभव होती है- जो अपने सद्गुरु के ध्यान में रमे हैं।

सद्गुरु के ध्यान में रमी ऐसी ही एक गुरुकृपा सिद्ध महातपस्विनी मां ज्योतिर्मयी का कथा प्रसंग बड़ा ही प्रेरक है। माता ज्योतिर्मयी का विवाह अल्पायु में उनके मायके वालों ने कर दिया था। पर देव का आघात उनके पति नहीं रहे। पति के बूढ़े माता-पिता भी इकलौते पुत्र के वियोग की वजह से स्वर्ग सिधार गए। इधर मायके वालों पर भी दुर्भाग्य की कुदृष्टि थी। वह थी भी माता-पिता की इकलौती कन्या। पुत्री की इस दारूण वेदना से विह्वल माता-पिता अधिक दिन जीवित न रह पाये। वे भी परलोकवासी हो गए। बारह-तेरह वर्ष की बालिका ज्योतिर्मयी का इस संसार में अपना कोई न रहा।

रोती-बिलखती, यह विधवा बालिका अपने जीवन के घने अंधेरे से घबरा गई। क्या करें ? कहाँ जाएँगे ? ये सवाल उसके सामने भूखे शेर की तरह गर्जने लगे। इनसे छुटकारा पाने के लिए उसके पास मांग गंगा की गोद के सिवा और कोई भी रास्ता न था। सो उसने अपने गांव के पास बहती हुई गंगा नदी की धारा में प्राण त्यागने की ठान ली। रात के घने अंधेरे में जब वह गंगा की गोद में छलांग लगाने के लिए उद्यत थी। तभी किसी ने पीछे से आकर उसका हाथ पकड़ लिया। अचानक इस तरह हाथ पकड़ लेने पर वह चिहुँकी और चौंकी। पीछे मुड़कर देखा तो गैरिक वस्त्रधारी एक वृद्ध संन्यासी खड़े थे। उनके श्वेत केश शुभ्र चाँदनी में चाँदी की तरह चमक रहे थे।

उन्होंने प्यार से उसका हाथ थाम कर केवल इतना कहा- बेटी ! जिसका कोई नहीं होता, उसका भगवान् होता है। भगवान् अपने इस सबसे प्यारे बच्चे की सहायता के लिए किसी न किसी को अवश्य भेजता है। उसी ने तुम्हारे लिए मुझे भेजा है। आओ तुम मेरे साथ आओ। उन संन्यासी के स्वरों में मां की ममता थी। बालिका ज्योतिर्मयी ने उन पर सहज विश्वास कर लिया। वही उनके गुरु हो गए। और भरोसा, गुरु का ध्यान ही उसका धर्म बन गया। इसी धर्म के निर्वाह में उसके दिवस-रात्रि बीतने लगे।

प्रातः स्नान आदि नित्यकर्मों से निबटकर वह सद्गुरु के ध्यान में खो जाती। सहस्रदल कमल पर गुरुदेव की भव्यमूर्ति का ध्यान यही उसकी साधना थी। नियमित अभ्यास के प्रभाव से ध्यान का चुम्बकत्त्व घना होता गया। और इस चुम्बकत्व ने उसके प्राण प्रवाह की गति बदल दी। निम्नगामी प्राण विद्युत ऊर्ध्वगामी होने लगी। जो ऊर्जा निम्न केन्द्रों पर एकत्रित रहती थी। अब उसने ऊर्ध्वगामी होकर चेतना के उच्च केन्द्रों को जाग्रत् करना प्रारम्भ कर दिया। चक्रों के जागरण, बेधन एवं प्रस्फुटन की क्रिया चल पड़ी। सोते-जागते, उठते-बैठते, चलते-फिरते, काम करते हुए ज्योतिर्मयी की भावनाएँ सहस्रदल कमल में स्थापित सद्गुरु की चेतना में विलीन होती रहती थी। समय के साथ इसमें प्रगाढ़ता आती गयी।

वर्षों बीत गए। और गुरु ने स्थूल देह का त्याग कर दिया। पर उनकी सूक्ष्म चेतना के साथ ज्योतिर्मयी का अभिनव सहचर्य था। वह हमेशा कहती थी कि सच्चा शिष्य हमेशा अपने गुरु के साथ रहता है। वह अपने गुरु में रहता है। और गुरु उसमें समाए रहते हैं। अब उसका व्यक्तित्व सभी आध्यात्मिक सिद्धियों, शक्तियों एवं विभूतियों का भण्डार बन गया। आध्यात्मिक साधना की दुर्लभ कही जाने वाली अवस्थाओं को उसने सहज प्राप्त कर लिया। हालांकि उसके आस-पास के लोग उसकी इस उच्च स्थिति से अनजान थे। उन्हें तो इस सत्य का तब पता चला जब हिमालय की दुर्गम कन्दराओं में तप करने वाले योगिराज महानन्द ने उन्हें बताया कि तुम्हारे गांव के पास गंगा किनारे वास करने वाली माँ ज्योतिर्मयी परम योगसिद्ध हैं। और उन्हें यह अवस्था सद्गुरु के ध्यान से मिली है। इस सच को सुनकर सभी कह उठे- सद्गुरु की महिमा अनन्त। इस अनन्त महिमा के अनन्त विस्तार का अगला आयाम इस प्रकार है-



गुरु का वाक्य ब्रह्मवाक्य समान

'गुरुगीता' गुरुगत प्राण शिष्यों के लिए मंत्रमय है। जो शिष्य है वे महामंत्रमयी गुरुगीता का मर्म समझते हैं। उन्हें मालूम है कि मंत्र साधक की मानसिक चेतना की दशा व दिशा को आमूल-चूल बदल देता है। यह बदलाव लोहे को सोने में बदलने जैसा है। 'मंत्र' पारस के छूते ही सब कुछ बदल जाता है। लोहे की कलंक-कालिख सोने की स्वर्णिम आभा बिखरने लगती है। साधना व गुरुकृपा से अनजान चित्त के लिए यह पारस कथा अतिशयोक्ति भरा झूठ लग सकती है। पर जिन्हें गुरु की कृपा छाँव मिली है, वे जानते हैं कि गुरुदेव की छुअन में सारे आश्चर्यकारी परिवर्तन समाये हैं। उनकी कृपा से सारे असम्भव सहज सम्भव हो जाते हैं। साधना का सच-गुरुकृपा का प्रभाव तार्किक विश्लेषण व गणित शास्त्र के समीकरण की सभी सीमाओं से पार है।

इसका अतुलनीय प्रभाव हमेशा ही हमें अनुभव करने का नेह निमंत्रण देता है। जिन्हें यह निमंत्रण मिला है, जिन्होंने इसका अनुभव पाया है, उनके हृदय इन क्षणों में भी गद्‌गद एवं पुलकित है। इस पुलकन के कुछ पल इस गुरुभक्ति कथा के पूर्वोक्त मंत्रों में विवेचित किये गये हैं। इसमें शिव संदेश यही है कि गुरुदेव से अधिक और कुछ नहीं है। भगवान् भोलेनाथ ने यही कहा है-गुरुतत्त्व परम कल्याणकारी है। यह मेरा (शिव का) आदेश है। गुरु ध्यान की सहज परिणति साफ है। उन कृपालु सद्‌गुरु की कृपा से मैं मुक्त हूँ, ऐसा चिंतन करना चाहिए। ऐसा चिंतन करने वाला सदा ही मुक्त रहता है। कर्मों की शृंखला उसे बाँधने में कभी समर्थ नहीं होती।

इस सच के नये आयाम खोलते हुए भगवान् सदाशिव आदि माता भवानी से कहते हैं–

गुरुदर्शितमार्गेण मनःशुद्धिं तु कारयेत।
अनित्यं खण्डयेत् सर्वं यत्किञ्चिदात्मगोचरम्॥९९॥
ज्ञेयं सर्वस्वरूपं च ज्ञानं च मन उच्यते।
ज्ञानं ज्ञेयसमं कुर्यात् नान्यः पन्था द्वितीयकः॥१००॥

गुरुदेव जो भी राह दिखायें उसी राह पर चलते हुए मन की शुद्धि करना कर्त्तव्य है। शिष्य को चाहिए कि मन व इन्द्रियों से भोगे जाने वाले सभी भोगों को और सभी अनित्य पदार्थों को त्याग दे॥९९॥ सभी को आत्म स्वरूप अनुभव करना ज्ञान है। जिसे ज्ञान हो रहा है और जिसका ज्ञान हो रहा है, ये दोनों ही समान है। अर्थात् यह सम्पूर्ण जगत् अपनी आत्मा का विस्तार है। ऐसा अनुभव ही मोक्ष कारक है। इसके सिवा अन्य कोई पथ नहीं है॥१००॥

गुरुगीता के रूप में उचारे गये इन शिववचनों में साधना, साध्य व सिद्धि का मर्म छिपा है। साधना वही जो गुरुदेव बताये। साध्य वही जिसकी ओर वे इशारा करे और सिद्धि वही, जिसमें कि उनकी आत्मतत्त्व के विस्तार रूप में अनुभव हो। इस सम्पूर्ण जगत् में एक ही तत्त्व है–एक ही सत्य है। इस आत्मतत्त्व के अनुभव में जो प्रतिष्ठित हो गये वही ज्ञानी है। ज्ञान, ज्ञाता व ज्ञेय में कोई भेद नहीं है। सब एक ही का विस्तार है। गुरु द्वारा दिखाई गयी राह पर चलने से प्रत्येक शिष्य को यह अनुभूति हो जाती है।

इस अनुभूति को बताने वाली एक शिष्य की बड़ी मधुर आप बीती है। गुरु के स्पर्श ने इस शिष्य को अनायास ही लोहे से सोने में बदल दिया। बंगाल के एक गाँव सिहुड़ में जन्म हुआ। माँ–बाप ने नाम दिया सिद्धेश्वर। जिसे बाद में गाँव–टोले के लोगों ने मिलकर सिधुआ बना दिया। जैसा नाम वैसा गुण, सिद्धेश्वर बचपन से ही सीधा और भोला था। दैव का प्रकोप माँ–बाप बचपन में ही चल बसे।

अनाथ होने का दर्द उसके सिवा भला और कौन अनुभव कर सकता था। अपमान से दिया गया अन्न और तिरस्कार से दिया गया जल उसकी भूख, प्यास बुझा देता था, पर कभी-कभी जब और अधिक अपमान सहने की हिम्मत न पड़ती तो वह भूखा ही सो जाता।

उसका बचपन ऐसे ही बीत रहा था। तभी एक दिन बाबा सोमेश्वर उसके गाँव में आये। उनकी भव्य देह यष्टि, शुभ्र केश, ज्योति बिखेरती आँखें, आशीर्वचन सुनाते होंठ। उसने जब पहली बार उनको देखा तो देखता ही रह गया। समझ में नहीं आया क्या कहे? कैसे कहे? उसने तो बस इतना ही सुना कि बाबा को लोग परमहंस देव कह रहे हैं। उसने जब उनके पास जाने के लिए सोचा तो किसी ने उसे जोर का धक्का दिया, पर बाबा ने अपने बलिष्ठ हाथों से उसे सम्भाल लिया। वह तो बस डर के मारे उनसे चिपट गया। भीड़ जब बाबा के पास से विदा हुई तो बाबा उसका सिर सहलाते हुए बोले-बेटा! मैं इस गाँव में केवल तुम्हारे लिये आया हूँ।

उसका भी कोई अपना है, यह उसके लिए बड़े अचरज की बात थी। पर बाबा ने उसे बड़े प्यार से माँ दुर्गा का मंत्र स्मरण करना सिखाया और बोले-बेटा! तुम बिना परेशान हुए इसी गाँव में रहते हुए सबकी सेवा करते रहो। पर बाबा ये लोग तो ......। वह आगे और कुछ बोल पाता तभी बाबा बोले 'बहुत सताते हैं न तुम्हें।' हाँ बाबा। उसकी हाँ सुनकर बाबा सोमेश्वर ने अपनी आँखें शून्य में टिका ली और कहीं आकाश में खो गये। कुछ सोचते हुए उनकी आँखों में आँसू भर आये। फिर थोड़ी देर में प्रकृतिस्थ हुए और बोले- ये सब जो भी सताये, उसे प्रसन्नतापूर्वक सहन करो। इन सबके उत्पीड़न को प्रसन्नतापूर्वक सहते हुए इनकी सेवा करो। यही तुम्हारा साधना पथ है। मानोगे मेरी बात, कर सकोगे ऐसा।

१५-१६ साल का सिद्धेश्वर चुप हो गया। पर मना कैसे करता, जिन्दगी में पहली बार तो किसी ने उससे प्रेम से बात की है। उसने

हामी भर दी। माँ दुर्गा का स्मरण, सारे तिरस्कार को सहकर सबकी सेवा, यही उसका जीवन बन गया। लोग जितना अधिक अपमानित करते माँ दुर्गा उसे उतनी ज्यादा याद आती। बड़े विह्वल होकर वह माँ को पुकारने लगता। रात में जब सोता तब सपने में कभी-कभी वह परमहंस बाबा सोमेश्वर उसके सिरहाने बैठे दिखते। इन सालों में उसमें एक फर्क यह हुआ कि अब वह युवा हो गया। एक दूसरा फर्क यह हुआ कि अब सोते-जागते उसका मन जगन्माता माँ दुर्गा और अपने प्यारे गुरुदेव में विलीन रहता।

अब धीरे-धीरे उसे लोगों ने अपमानित करना बन्द कर दिया। पर उसका मन अब माँ का हो गया था। माँ के स्मरण से ही उसकी सुबह होती और माँ के स्मरण से ही उसकी पलके मुँदती। एक रात जब वह सो रहा था, तभी अचानक मूलाधार में सोई महासर्पिणी जाग उठी। अजीब सा प्रभाव हुआ उस पर। लगभग विक्षिप्त सा हो गया। यह दशा सालों बनी रही, परन्तु बाद में उसका मन थिर और शान्त हो गया। उसके मन के ज्ञान-कपाट खुल गए। इतने दिनों में चौबीस सालों का अन्तराल हो गया था। एक दिन बाबा सोमेश्वर फिर से उसके पास आए और बोले बेटा! तुम्हारी साधना सफल हो गयी है। अब तुम सिद्ध हो। उसने विह्वल हो उनके पांव पकड़ लिए। और बोला बाबा मैं तो इन चरणों का दास हूँ। मैं तो कुछ किया ही नहीं। बस आपके कहे को करता रहा हूँ। बाबा हँसते हुए बोले, गुरु के कहे हुए को जो अक्षरशः कर लेता है, वह शुद्ध, बुद्ध व मुक्त हो जाता है। इसके विपरीत जो गुरु का विरोध करता है। वह दुर्गति को प्राप्त होता है।



सबसे सच्ची सिद्धि : गुरुभक्ति

गुरुगीता के भक्तिगीत अन्तस् में गुरुभक्ति का अंकुरण-स्फुरण करते हैं। इन भक्ति गीतों के पठन-मनन-गायन से अन्तःकरण गुरुभक्ति से आप्लावित होता है। चित्त की गहराइयों में गुरुदेव के प्रति अनुराग प्रगाढ़ होता है। यह प्रगाढ़ अनुराग ही तो अध्यात्म साधना की घनीभूत ऊर्जा है। जिसके अन्तस् में इस महाऊर्जा का घनत्व जितना अधिक है, वह अध्यात्म पथ पर उतनी ही अधिक तीव्रता से गतिशील होता है। इसके विपरीत जिसके अन्तस् में गुरुभक्ति की ऊर्जा का घनत्व अविकसित, अल्प अथवा शून्य है, उसका आध्यात्मिक जीवन भी शून्य बना रहता है। उसके आध्यात्मिक लक्ष्य उससे हमेशा दूर बने रहते हैं। फिर भले ही वह कितना जप-तप अथवा कर्मकाण्ड करता रहे। जो विज्ञ हैं, विवेकी हैं वे जानते हैं कि साधना के सभी कर्मकाण्ड स्थूल देह के कलेवर का निर्माण भर करते हैं। इसमें प्राण का संचरण केवल गुरुभक्ति से ही होता है।

पिछले मंत्रों में भगवान् सदाशिव के यही वचन थे कि गुरुदेव जो भी राह दिखाए, उसी राह पर चलते हुए मन की शुद्धि करना शिष्य का कर्त्तव्य है। शिष्य का यही कर्त्तव्य है कि मन व इन्द्रियों से भोगे जाने वाले सभी भोगों को और सभी नाशवान् पदार्थों को त्याग दे। सम्पूर्ण जगत् को अपनी आत्मा के विस्तार के रूप में अनुभव करे। गुरुकृपा से यदि यह अनुभूति निरन्तर होती रहे तो शिष्य, साधक अपने परम गन्तव्य तक, जीवन के चरम आध्यात्मिक लक्ष्य तक पहुँच जाता है।

भगवान् सदाशिव गुरुगीता के अगले प्रकरण में कहते हैं कि यदि भूल से, प्रभाव से अथवा अहंकारवश यदि कोई शिष्य गुरुवचनों

की अवहेलना करता है तो उसका अध्यात्म मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। मां भवानी से इस प्रकरण को स्पष्ट करते हुए भोले बाबा कहते हैं-

एवं श्रुत्वा महादेवि गुरुनिन्दां करोति यः।
स याति नरकं घोरं यावद् चन्द्रदिवाकरौ॥ १०१॥
यावत्कल्पांतको देहस्तावदेव गुरुं स्मरेत्।
गुरुलोपो न कर्तव्यः स्वच्छन्दो यदि वा भवेत्॥ १०२॥
हुंकारेण न वक्तव्यं प्राज्ञैः शिष्यैः कथञ्चन।
गुरोरग्रे न वक्तव्यम् असत्यं च कदाचन॥ १०३॥
गुरुं त्वंकृत्य हुंकृत्य गुरुंनिर्जित्य वादतः।
अरण्ये निर्जले देशे स भवेद् ब्रह्मराक्षसः॥ १०४॥
मुनिभिः पन्नगैर्वाऽपि सुरैर्वा शापितो यदी।
कालमृत्युभयाद्वापि गुरुर्रक्षति पार्वति॥ १०५॥
अशक्ता हि सुराद्याश्च अशक्ता मुनयस्तथा।
गुरुशापेन ते शीघ्रं क्षयं यान्ति न संशयः॥ १०६॥

गुरु की जो महिमा मैंने पहले बतायी, उसे जानकर, सुनकर भी यदि कोई गुरुनिन्दा करता है। वह जब तक चन्द्र, सूर्य है, तब तक घोर नरक में पड़ा रहता है ॥१०१॥ इसलिए जब तक देह है तब तक यहाँ तक कि कल्पान्त तक भी गुरुदेव का स्मरण करते रहना चाहिए। शिष्य को चाहिए कि मुक्त होने पर भी वह गुरु स्मरण का लोप न होने दे ॥१०२॥ जो शिष्य प्रज्ञावान व विवेकी है वे कभी भी अपने गुरु के सामने हुंकार पूर्वक (तेज स्वर में) बात नहीं करते। इतना ही नहीं वे गुरु के सामने कभी भी असत्य नहीं बोलते ॥१०३॥ और जो गुरु के पास तू करके, हुं करके बाते करते हैं वे किसी निर्जन अरण्य प्रदेश में ब्रह्मराक्षस का जीवन जीने के लिए विवश होते हैं ॥१०४॥ भगवान् शिव कहते हैं हे पार्वती! मुनि, नाग, देवों के शाप से, काल और मृत्यु के भय से केवल गुरुदेव ही शिष्य का रक्षण करने में समर्थ हैं ॥१०५॥ लेकिन जो गुरु के शाप से ग्रस्त हैं उनकी रक्षा कोई भी देवता अथवा

मुनि नहीं कर पाते। ऐसे शिष्य शीघ्र ही नष्ट होते हैं, इसमें कोई संशय नहीं है ॥१०६॥

देवाधिदेव भगवान् महादेव के इन वचनों में बड़ी गहरी अनुभूति समायी है। जो तार्किक हैं वे तो इस सच को शायद ही छू पाएँ। लेकिन जो तप करते हैं, जिन्होंने अपनी अन्तर्यात्रा में गुरु-महिमा को जाना है वे इस अनुभूति कथा को पल-पल जीते हैं। इस अनुभव को साकार करने वाली बड़ी मर्मस्पर्शी घटना है, जो एक शिष्य के जीवन में तब हुई, जब उसका अपने आराध्य गुरुदेव से प्रत्यक्ष सम्पर्क नहीं हुआ था।

विद्यार्थी जीवन में उसका परिचय एक अघोर साधक से हुआ। यह अघोर साधक जिसे सभी अघोरी कहते थे कई आश्चर्यजनक सिद्धियों-शक्तियों का स्वामी था। एक पदार्थ को दूसरे पदार्थ में बदल देना उसके लिए साधारण कौतुक भर था। मिठाई को विष्ठा बना देना और सड़े मांस को सुगन्धित, सुरभित मिष्ठान्न में परिवर्तित कर देना उसके लिए पलक झपकाने भर का काम था। पंचभूतों के अणु-परमाणु को अपने संकल्प बल से एकत्रित करके किसी भी वस्तु को साकार कर देना भी उसके लिए सामान्य सी बात थी। और भी अनेकों आश्चर्यजनक सिद्धियाँ उसके पास थी। अपनी इन सारी शक्तियों के बावजूद यह अघोर साधक बड़ा व्यथित, पीड़ित रहा करता था। यहाँ तक कि कभी-कभी शून्य में तकते हुए उसकी आँखों से आँसुओं की धार बह निकलती।

एक दिन इस विद्यार्थी ने उससे पूछा- बाबा! आप बीच-बीच में इतने दुःखी क्यों हो जाते हैं? आपके पास तो इतनी सिद्धियाँ हैं, फिर भी आप रोने लगते हैं? जवाब में उसने लगभग बिलखते हुए कहा- बेटा! तू शायद अभी समझेगा नहीं। पर चल तुझे बताकर अपना मन हलका कर लेता हूँ। तू पूछता है तो सुन ले- मेरा भगवान् मुझसे रूठ गया है। मेरा गुरु मुझसे नाराज है। उसने मुझे एक हजार

साल तक भटकते रहने का शाप दिया है। बाबा की ये अटपटी बातें इस विद्यार्थी के पल्ले नहीं पड़ी। उसने बस यूँ ही पूछा- तब कितने साल हो गए आपको भटकते हुए।७५० साल, उसने बड़े इत्मिनान से जवाब दिया।

इन जवाब ने पूछने वाले को गहरी हैरानी में डाल दिया। उसने कहा पर आप तो केवल ५०-६० साल के लगते हैं। यह बात सुनकर वह जोर से हँसा और बोला- अरे मैं शरीर की बात थोड़े ही करता हूँ। इस शरीर की तो यही उम्र होगी। मैं तो अपनी बात करता हूँ। शरीर तो जब भी पुराना हो जाता है, मैं उसे छोड़कर किसी युवा मृत शरीर में प्रवेश कर जाता हूँ। साँप काटे हुए व्यक्ति को प्रायः लोग बहा देते हैं। ऐसे ही किसी शरीर को मैं अपना बना लेता हूँ।

पर आपके गुरु नाराज क्यों हुए? गुरु तो बड़े कृपालु होते हैं। सिद्धियों के घमण्ड से। अरे बेटा! मुझे अपनी साधना और सिद्धियों का भारी घमण्ड हो गया था। इस घमण्ड के कारण मैं किसी को कुछ नहीं समझता था। यहाँ तक कि लोगों के बहकावे में आकर मैं स्वयं को भगवान् मानने लगा था। इसी अहं के कारण एक दिन मैंने अपने गुरु को भी खरी-खोटी सुना दी। इस पर गुरुदेव ने कहा- तू क्या समझता है सिद्धियों से कोई भगवान् हो जाता है। जा तू अब १००० साल तक भटक और सिद्धियों के दंश को झेल। बस बेटा तब से मैं नए-नए शरीरों में रहते हुए सिद्धियों के शाप को झेल रहा हूँ।

अपनी बात कहते हुए उसने पूछने वाले के सिर पर प्यार से हाथ रखा और बोला- बेटा! आगे कुछ सालों बाद तुझे तेरे गुरु मिलेंगे। तू कभी भी उनकी बात की अवहेलना न करना। उनकी सब बातें मानना। और सिद्धियों के जाल में मत उलझना। सबसे सच्ची सिद्धि तो गुरुभक्ति है। जिसे यह मिल गई उसे समझो सब कुछ मिल गया। इस सिद्धि का उपाय क्या है? यह अगले मंत्र में स्पष्ट किया गया है।



'गुरुसेवा' ही सच्ची साधना

गुरुगीता शिष्यों के लिए आध्यात्मिक कल्पतरु है जो शिष्य इसके मंत्रों के मर्म को जान लेते हैं, उन्हें जीवन की सभी आध्यात्मिक सफलताएँ मिलती है। इस सत्य को वे सभी अपनी अनुभूति बना सकते हैं, जिनके अन्तस् में शिष्यत्व की सजल संवेदना प्रवाहित है। शिष्यत्व उर्वर कृषि भूमि है और आध्यात्मिकता बीज। जिसे कृपालु सद्‌गुरु न केवल अपने शिष्यों के अन्तःकरण में बोते हैं, बल्कि इसके अंकुरण के लिए उपयोगी खाद-पानी भी जुटाते हैं। सद्‌गुरु तो सदा होते ही हैं भाव संवेदनाओं की साकार मूर्ति। उन्हें तो हमेशा कृपा करना आता है। पर इसके लिए सत्पात्र भी तो हो। सुशिष्य ही सत्पात्र होते हैं। उनकी अन्तर्भूमि ही आध्यात्मिक बीजों के लिए उर्वर व उपयोगी होती है। यह उपयोगिता व उत्कृष्टता तब और सघन हो जाती है, जब उन्हें गुरुगीता की सघन आध्यात्मिक छाँव प्राप्त हो।

पूर्वोक्त मंत्रों में भगवान भोलेनाथ ने शिष्यों को चेताया है कि वे कभी भी किसी भी अवस्था में सद्‌गुरु की अवहेलना न करें। परिस्थितियाँ कुछ भी हों, पर वे अपने सद्‌गुरु के प्रति न केवल शिष्ट, शालीन व विनम्र रहे, बल्कि भक्तिपूर्ण भी हों। गुरुदेव के हर कार्य का विशिष्ट अर्थ होता है। फिर यह कार्य ऊपरी तौर पर देखने से कितना ही निरर्थक क्यों न लग रहा हो। गुरु की अवहेलना करने वाला बुद्धिमान होने पर भी ब्रह्म राक्षस की तरह अभिशप्त हो जाता है। विश्व की सभी आध्यात्मिक शक्तियों के रुष्ट होने पर सद्‌गुरु त्राण कर लेते हैं, परन्तु गुरुदेव के रुष्ट होने पर कोई त्राणदाता नहीं मिलता।

भगवान महेश्वर इस कथा के अगले प्रकरण में कहते हैं-

मंत्रराजमिदं देवि गुरुरित्यक्षरद्वयम्।
स्मृतिवेदार्थवाक्येन गुरुः साक्षात्परं पदम्॥ १०७॥
श्रुतिस्मृती अविज्ञाय केवलं गुरुसेवकाः।
ते वै सन्यासिनः प्रोक्ता इतरे वेषधारिणः॥ १०८॥

नित्यं ब्रह्म निराकारं निर्गुणं बोधयेत् परम्।
सर्व ब्रह्म निराभासं दीपो दीपान्तरं यथा॥ १०९॥
गुरोः कृपाप्रसादेन आत्मारामं निरीक्षयेत्।
अनेन् गुरुमार्गेण स्वात्मज्ञानं प्रवर्त्तते॥ ११०॥

गुरु ये दो अक्षर अपने में महामंत्र है। यह महामंत्र सभी मंत्रों का राजा है। सभी स्मृतियों एवं वेदवाक्यों का मर्म यही है कि गुरु ही स्वयं परमपद है॥ १०७॥ जो शिष्य अपने गुरुदेव की सेवा में तल्लीन है। वे भले ही श्रुतियों व स्मृतियों को न जानते हों, पर वे हैं सच्चे संन्यासी। इसके विपरीत जो गुरुसेवा को विमुख हैं, वे भले ही संन्यासी का वेष धारण किये हों, पर केवल निरवेषधारी हैं। उनमें कोई आध्यात्मिक तत्त्व नहीं हैं॥ १०८॥ नित्य निराकार, निर्गुण ब्रह्म का बोध केवल गुरु कृपा से मिलता है। जिस तरह दीप से दीप जलता है, उसी तरह से गुरुदेव शिष्य के अन्तस् में ब्रह्मज्ञान की ज्योति जला देते हैं॥१०९॥ शिष्य को चाहिए कि वह अपनी सद्गुरु कृपा की छाँव में आत्मतत्त्व का चिंतन करे। ऐसा करते रहने पर गुरुदेव के द्वारा दिखाए मार्ग से स्वतः आत्मज्ञान हो जायेगा॥ ११०॥

भगवान शूलपाणि के इन बोध वचनों में ऐसा अलौकिक प्रकाश है, जो शिष्यों के आध्यात्मिक पथ को प्रशस्त कर देता है। शिष्य के लिए गुरुसेवा 'साधना' है। गुरु सेवा का अर्थ है गुरुदेव जो भी कहें, जैसा भी काम सौपें वैसा ही करना। कई बार गुरुदेव द्वारा कहे गये कार्य को बड़ी सांसारिक, लौकिक एवं सामाजिक रीति से आँकते हैं। और ऐसा करते हुए वे भूल जाते हैं कि गुरुदेव तो संसार की सभी बातों से परे हैं, फिर भला वे सांसारिक कैसे हो सकते हैं। वे यदि शिष्य को काँटों भरी डगर से गुजारते हैं तो केवल इसलिए कि इससे उसका कल्याण होगा। उनके द्वारा दिये गये प्रत्येक कष्ट में भविष्य के अनेकों सुखद् अहसास समाये होते हैं। पर इसे केवल वही समझ पाता, जिसका हृदय भक्ति की भावनाओं से भरा है। ऐसी भावनाएँ

जिसकी चेतना में अंकुरित है–वह जानता है, गुरुदेव तो केवल अपनी ज्ञान ज्योति से शिष्य में ब्रह्मज्ञान की परम ज्योति जला रहे हैं।

इस सम्बन्ध में बड़ी प्यारी अनुभूति कथा है। यह कथा एक ऐसे शिष्य की है, जिसके मन में तो उज्ज्वल विचार थे, पर जिसके संस्कार बड़े दूषित थे। जो अनचाहे व अनजाने अनेकों वासनाओं से घिर जाता है। अनेकों प्रयत्नों के बावजूद जिसकी काम वासना शान्त न होती थी। बड़ी दुःखद स्थिति थी उसकी। इस गहरी पीड़ा में उसका कोई साझीदार न था। उसकी कामवासना की परिणति सदा अवसाद में होती है, पर करे भी तो क्या? कोई रास्ता भी तो न था। कामवासना की भीषणता में ध्यान, जप एवं उपवास के सारे प्रयोग निर्थक चले जाते। अपने आन्तरिक द्वन्द्व व संघर्ष के इन्हीं घड़ी में गुरु ने अपने शिष्य को अपना लिया और शिष्य ने अपने उद्धारक सद्‌गुरु को पहचान लिया।

विकल वासनाओं से घिरे शिष्य की यही एक चाहत थी कि उसकी वासनाएँ गिरें, उसका चित्त निर्मल हो। गुरुदेव ने उसे आश्वासन भी दिया। और कहा कि वह अपने को आश्रम की साफ–सफाई में लगा दें। ऊपर से साधारण दिखने वाले इस काम में शिष्य ने अपने को झोंक दिया। रात–दिन उसका एक ही काम था–जो कहा गया उसे करना। अपमान तिरस्कारों की झड़ी, शारीरिक व मानसिक परेशानियाँ उसे डिगा न सकी। गुरुदेव को दिया गया वचन ही उसका जीवन था। ऐसा करते हुए उसकी किशोरावस्था कब प्रौढ़ावस्था में बदल गयी, पता नहीं चला। हालाँकि उसे अपने जीवन के इस तरह बीत जाने का कोई दुःख न था, परन्तु एक पीड़ा अवश्य उसके मन में पलती थी। एक वेदना से अवश्य उसका मन विकल होता था और वह वेदना थी–वासनाओं के आकर्षण की। अभी तक उसका मन पूर्ण निर्मल न हो पाया था।

अपनी इस वेदना को अपने अकेलेपन में जीता हुआ वह गुरु आज्ञा का पालन किये जा रहा था। पर कहीं गहरे छुपे दुःख में वह

लिपटा हुआ था। बार-बार उसका आर्त स्वर बाबा सर्वानन्द को पुकार लेता, जो अब अपनी स्थूल देह में नहीं थे। अरे! यह क्या हुआ बाबा? मेरा अन्तस् इतना कलुषित क्यों है? पुकार के स्वर निरन्तर गहरे-घने होते गये। पीड़ा बढ़ती गयी। यह सघन पीड़ा ही उसकी प्रार्थना बन गयी। अपने शिष्य की इस असह्य वेदना को भला कृपालु सद्गुरु कब तक सहन करते। एक दिन वह उसके ध्यान में प्रकट हो गये। बेचारा शिष्य बिलख-बिलख कर रो पड़ा। उसके अन्तस् से यही भाव फूटे-गुरुदेव! आपने जैसा कहा-मैंने वही किया। फिर भी मेरी यह दुर्दश क्यों है।

उसकी भाव चेतना में उपस्थित बाबा सर्वानन्द की सूक्ष्म चेतना स्पन्दित हुई। वत्स! हम तुम्हारी पीड़ाओं से परिचित हैं। यह सच है कि तुम अभी पूर्ण परिष्कृत हो पाये हो, परन्तु अपने परिष्कार की राह पर गतिशील हो। तुम्हारे इस वर्तमान जीवन और शरीर की कुछ सीमाएँ हैं। तुम्हें यह जीवन एवं शरीर तुम्हारे विगत दुष्कर्मों के प्रायश्चित के लिए मिला है। और वही हो रहा है। प्रत्येक घटी-प्रत्येक पल में विभिन्न परिस्थितियों के द्वारा तुम्हारे चित्त को निर्मल बना रहा हूँ। तुम्हारा सूक्ष्म शरीर भी जाग्रत होकर परिपक्व होने की दशा में है। इसके सम्पूर्ण विकास के साथ ही तुम्हारी स्थूल देह नष्ट हो जायेगी, क्योंकि इस देह से उच्चस्तरीय आध्यात्मिक साधनाएँ सम्भव नहीं है। ध्यान रहे जो देह प्रायश्चित के लिए मिलती है, वह अध्यात्म की उच्चतम कक्षा के लिए योग्य नहीं होती। उच्चतम साधनाओं का क्रम तुम अपनी सूक्ष्म चेतना द्वारा पूरा करोगे। अगले जीवन में इसमें और भी विकास होगा। बाबा सर्वानन्द की इन बातों ने शिष्य को यह अनुभव करा दिया कि कृपालु गुरुदेव सदा अपने शिष्य का ध्यान रखते हैं। बस शिष्य उन्हें अपने भावों में अनुभव करता रहे।



गुरुभक्ति ही साधना, वही है सिद्धि

गुरुगीता की मंत्रमाला में आध्यात्मिक साधना की प्रक्रियाएँ और तत्त्वज्ञान दोनों पिरोये हैं। जो आध्यात्मिक प्रक्रियाओं को श्रद्धा व समर्पित भाव से सम्पन्न करते हैं, उन्हीं को तत्त्वज्ञान की अनुभूति होती है। जिनमें आध्यात्मिक प्रक्रियाओं के प्रति रुचि नहीं है, उनके लिए सच्ची अभीप्सा नहीं है, वे तत्त्वज्ञान की अनुभूति नहीं कर पाते। तत्त्वज्ञान के ग्रंथ-शब्द उनके लिए बौद्धिक विचार, तर्कजाल व वाणी विलास का विषय बनकर रह जाते हैं। ऐसे लोग शब्दों को तो पढ़ते, कहते व सुनते हैं, पर इनका अर्थ खोजने में असफल रहते हैं। इस खोज के लिए साधना का होना, तप परायण बनना अनिवार्य है। यथार्थ में तत्त्वज्ञान तप साधना का निष्कर्ष है। इसे कठिन साधनाओं को करने वाले लोग ही प्राप्त करते हैं। और उन्हीं में इसके समझने की सही योग्यता विकसित होती है।

पूर्वोक्त मंत्र में भगवान सदाशिव ने शिष्यों को सावधान किया है कि कहीं इधर-धर भटको मत। 'गुरु' ये दो अक्षर स्वयं में महामंत्र है। यह महामंत्र अन्य सभी मंत्रों से श्रेष्ठतम व सर्वोत्तम है। सभी शास्त्र वचनों का मर्म यही है। अपने प्यारे सद्‌गुरु की सेवा में लीन शिष्य ही सच्चा संन्यासी है। गुरु से विमुख व्यक्ति को कहीं कोई ठौर नहीं है। परमात्मतत्त्व का बोध केवल सद्‌गुरु की कृपा से मिलता है। जिस तरह से दीप से दीप जलता है, उसी तरह से सद्‌गुरु-शिष्य के अन्तःकरण में ब्रह्मज्ञान की ज्योति जला देते हैं। शिष्य का कर्त्तव्य है कि वह अपने सद्‌गुरु के कृपा की छाँव में आत्मतत्त्व का चिंतन करे। ऐसा करते-करते गुरुदेव द्वारा दिखाये मार्ग से स्वतः ही आत्मज्ञान हो जायेगा।

भगवान नीलकण्ठ इस भक्ति कथा के अगले प्रकरण में कहते हैं-

आब्रह्मस्तम्बपर्यन्तं परमात्मस्वरूपकम्।
स्थावरं जंगमं चैव प्रणमामि जगन्मयम्॥ १११॥

वन्देऽहं सच्चिदानन्दं भेदतीतं सदा गुरुम्।
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्॥ ११२॥
परात्परं ध्येयं नित्यम् आनन्दकारकम्।
हृदयाकाशमध्यस्थं शुद्धस्फटिकसन्निभम्॥ ११३॥
तथात्मनि चिदाकारं आनन्दं सोऽहमित्युत॥११४॥

ब्रह्मा से लेकर तिनके तक सभी जड़-चेतन परमात्मा का स्वरूप है और सद्गुरु परमात्ममय है। इसीलिए यह सम्पूर्ण जगत् उन्हीं का रूप है। ऐसा जानकर मैं उन्हें प्रणाम् करता हूँ। शिष्य ऐसा भाव रखे॥१११॥ शिष्य को चाहिए कि वह सच्चिदानन्द सभी भेद से परे गुरु तत्त्व को अनुभव करे और नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण और आत्मस्थित गुरुतत्त्व की वन्दना करे॥११२॥ श्री गुरुदेव आनन्द प्रदायक, नित्य एवं परात्पर हैं, उनके इसी शुद्ध स्फटिक स्वरूप का हृदयाकाश मध्य में ध्यान करना चाहिए॥११३॥ जिस तरह से दर्पण में स्फटिक की प्रतिमा दिखाई देती है, उसी तरह से आत्मा में चिदाकार आनन्दमय सद्गुरु का दर्शन होता है॥११४॥

गुरुगीता के साधना प्रकरण में सद्गुरु ध्यान की अनेक विधियाँ बतायी गयी हैं। इनमें से प्रत्येक विधि का अपना महत्त्व है। बस विधि का प्रयोग करने वाले में गहरी आस्था और दृढ़ गुरुभक्ति होनी चाहिए। शिष्य को हर पल इस सत्य का ध्यान रखना चाहिए कि सच्चे शिष्य व साधक के लिए गुरुभक्ति ही साधना है और यही सिद्धि है। तब कोई शिष्य इस सत्य को भूल जाता है तो उसकी साधना में भटकाव के दौर आते हैं। कभी यह भटकाव किन्हीं सिद्धियों को पाने की लालसा में होता है तो कभी अन्य किसी साँसारिक आकाँक्षाओं के कारण। लेकिन कृपालु सद्गुरु अपने शिष्य को इस भटकाव से चेताते हैं, बचाते हैं और उबारते-उद्धार करते हैं।

इस प्रसंग में एक बड़ी प्यारी कथा है। यह कथा उत्तर भारत के सुविख्यात् सन्त बाबा नीब करौरी व उनके विदेशी शिष्य रिचर्ड के बारे में है। इन रिचर्ड को बाबा ने अपने शिष्य के रूप में अपनाया था और नाम दिया था रामदास। इन रामदास में अपने गुरु के प्रति भक्ति

तो थी, किन्तु साथ कहीं सिद्धि-शक्ति की आकाँक्षा भी छुपी थी। एक बार वह एक स्वामी जी के साथ दक्षिण भारत की यात्रा कर रहे थे। बातों ही बातों में उन्होंने अपनी सिद्धि-शक्ति की चाहत के बारे में स्वामी जी को बताया। स्वामी जी ने उन्हें एक शक्तिशाली शिव मंत्र की दीक्षा दी और बताया कि इस मंत्र का जाप करने से वह अपार सम्पत्ति व शक्ति के स्वामी हो जायेगा। रामदास को शक्ति लोभ तो था ही सो वह लगातार कई हफ्ते तक मंत्र का जाप करते रहे। इस मंत्र जाप के प्रभाव से शरीर के बाहर होने व सूक्ष्म शरीर से भ्रमण करने की शक्ति मिल गयी।

बस फिर क्या था रामदास का कौतुकी मन जाग उठा और सूक्ष्म शरीर से निकल कर भ्रमण करने लगे। इसमें उन्हें आनन्द आने लगा। इस क्रम में उनकी यात्रा अन्य सूक्ष्म लोक-लोकान्तरों में भी होने लगी। एक बार जब वह अपनी इस प्रक्रिया के दौरान् किसी अन्य लोक में पहुँचे तो वहाँ उन्हें अपने सद्गुरु बाबा नीब करौरी दिखाई दिये। रामदास को अचरज भी हुआ और हर्ष भी। वे हर्षोन्माद में बाबा नीब करौरी की ओर दौड़ पड़े। बाबा उस समय अपने तख्त पर एक कम्बल ओढ़े बैठे थे। उनके आने पर उन्होंने कम्बल से अपना मुँह ढंक लिया और तीन बार ऐसी फूँक मारी जैसे कि कोई मोमबत्ती बुझा रहे हों। उनकी इस फूँक से रामदास को महसूस हुआ कि जैसे हर फूँक के साथ उनका शरीर फूलता जा रहा है, मानो उनकी किसी आन्तरिक नली में हवा भरी जा रही हो। तीसरी बार की फूँक के बाद रामदास ने स्वयं को अपने स्थूल शरीर में पाया। और वह अपने उसी स्थान पर थे, जहाँ उनकी नियमित साधना हो रही थी। लेकिन इस समूची प्रक्रिया में एक अचरज घटित हुआ कि दक्षिण भारत की यात्रा में स्वामी जी ने उन्हें जो मंत्र दिया था उसकी शक्ति समाप्त हो गयी थी। यही नहीं उनके मन में उस मंत्र के जपने की इच्छा भी मर गयी थी।

इस .... तमाशे से उनके मन में थोड़ी उलझन भी पैदा हुई। और वह इस उलझन को सुलझाने के लिए अपने गुरुदेव बाबा नीब करौरी के पास गये। उनहें आते हुए देखकर बाबा हँस पड़े और बोले-चल

बता कैसी चल रही है तेरी साधना और कैसा है तू? उनके पूछने से कुछ ऐसा लग रहा था जैसे वे कुछ भी जानते ही न हों। हालाँकि रामदास को मालूम था कि अन्तर्यामी गुरुदेव को सब कुछ ज्ञात है। फिर भी उन्होंने स्वामी जी के मंत्र की कथा, अपनी साधना और सूक्ष्म भ्रमण के अपने अनुभव के बारे में उन्हें ब्योरेवार बताया। साथ ही यह भी बताया कि किस तरह गुरुदेव बाबा नीब करौरी ने उनकी सारी शक्ति समाप्त कर दी।

रामदास के इस कथन पर बाबा बोले-बेटा! शिष्य तो बच्चा होता है उसकी अनेकों चाहतें भी होती हैं। और ये जो चाहते हैं वह कभी ठीक होती हैं तो कभी निरी बचकानी। गुरु को इन सब पर ध्यान रखना पड़ता है कि कहीं उसका शिष्य भटक न जाये। कहीं उसे कोई नुकसान न हो। तुम्हारे साथ जो हुआ वह तुम्हें नुकसान से बचाने के लिए हुआ। तुम्हारी साधना अभी कच्ची है। तुम्हारे सूक्ष्म शरीर में भी अभी पर्याप्त ऊर्जा नहीं है। ऐसी स्थिति में सूक्ष्म शरीर से भ्रमण करने पर अन्य लोकों के निवासी तुम्हें नुकसान पहुँचा सकते हैं। यहाँ तक कि तुम्हें अपने यहाँ कैदकर सकते हैं। ऐसी स्थिति आने पर तुम्हारे सूक्ष्म शरीर का सम्बन्ध स्थूल शरीर से टूट जायेगा। और न केवल तुम्हारी मृत्यु हो जायेगी, बल्कि तुम्हारी तप-साधना भी अधूरी रह जायेगी। तुम्हारे साथ मैंने जो कुछ भी किया वह तुम्हें इसी अप्रत्याशित स्थिति से बचाने के लिए किया। अपने सद्गुरु की इस कृपा को अनुभूत करके रामदास की आँखें छलक आयीं। सचमुच ही सद्गुरु के बिना भला और कौन सहारा है। इसलिए गुरुगीता के प्रत्येक मंत्र का सार यही है कि शिष्य को सतत् अपने गुरुदेव का ध्यान व स्मरण करते रहना चाहिए। इस क्रम में ध्यान की अन्य विधियाँ भी हैं, जिसकी चर्चा अगले मंत्र में की गई है।



सत् चित् आनन्दमयी सद्गुरु की सत्ता

गुरुगीता के महामंत्रों की साधना से सद्गुरु की चेतना शिष्य में अवतरित होती है। इस आध्यात्मिक अवतरण से शिष्य का जीवन परिष्कृत, परिमार्जित, परिवर्तित एवं रूपान्तरित हो जाता है। यह कुछ ऐसा है, जिसे महान् चमत्कार से कम न तो कुछ कहा जा सकता है और न आँका जा सकता है, लेकिन इसके लिए जरूरी है उस प्रक्रिया से गुजरना जिसे गुरुगीता के महामंत्र कहते हैं, बताते हैं। जो उपदेश, जो भाव, जो सत्य और जो क्रियाएँ इन महिमामय मंत्रों में निहित हैं, शिष्य को ऐसा ही करना चाहिए। जो शिष्य अपने अंतस् को सद्गुरु के चरणों में समर्पित करता है, उसे अपने आप ही सभी आध्यात्मिक तत्त्वों की उपलब्धि हो जाती है। गुरुदेव ही जड़-पदार्थ हैं और वही परात्पर चेतना। यह उन सभी को अनुभव होता है, जो उन्हें ध्याते हैं।

गुरुगीता की पिछली पंक्तियों में इस सच्चाई के कई सूक्ष्म आयाम प्रकट किये जा चुके हैं। इसमें भगवान भोलेनाथ बताते हैं कि ब्रह्मा से लेकर सामान्य तिनके तक सभी जड़-चेतन में परमात्मा-व्याप्त हैं। सद्गुरु परमात्मामय होने के कारण 'सर्वव्यापी' हैं। शिष्य को चाहिए कि वह अपने सद्गुरु को सत्-चित्-आनन्दमय जाने। इस अनुभूति के रूप में वह नित्य, पूर्ण, निराकार, निर्गुण व आत्मस्थित गुरुतत्त्व की वन्दना करे। श्री गुरुदेव के शुद्ध स्वरूप का हृदयाकाश के मध्य में ध्यान करे। ध्यान की यह अवधि एवं प्रक्रिया क्या हो, भगवान महेश्वर अगले प्रकरण में स्पष्ट करते हैं-

अंगुष्ठमात्रपुरुषं ध्यायतश्चिन्मयं हृदि।
तत्र स्फुरति भावो यः शृणु तं कथयाम्यहम्॥ ११५
अगोचरं तथाऽगम्यं नामरूपविवर्जितम्।

निःशब्दं तद्विजानीयात् स्वभावं ब्रह्म पार्वति॥ ११६॥
यथा गंधः स्वभावेन कर्पूरकुसुमादिषु।
शीतोष्णादिस्वभावेन तथा ब्रह्म च शाश्वतम्॥ ११७॥
स्वयं तथाविधो भूत्वा स्थातव्यं यत्र कुत्रचित्।
कीटभ्रमरवत् तत्र ध्यानं भवति तादृशम्॥ ११८॥
गुरुध्यानं तथा कृत्वा स्वयं ब्रह्ममयो भवेत्।
पिण्डे पदे तथा रूपे मुक्तोऽसौ नात्र संशयः॥ ११९॥

हृदय में चिन्मय आत्मज्योति के अंगुष्ठ मात्र स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान की गहनता, सघनता व प्रगाढ़ता से जो भाव स्फुरित होते हैं, उन्हें सुनो॥ ११५॥ भगवान शिव कहते हैं-हे पार्वती! इन्द्रियों से परे, सब भाँति अगम्य, नाम-रूप आदि विशेषताओं से परे, शब्द से रहित ब्रह्म का अनुभव अपने ही स्वरूप में होता है॥ ११६॥ जिस तरह से कर्पूर एवं पुष्प आदि सुगन्धित पदार्थों में स्वाभाविक ही सुगन्ध व्याप्त है। जिस भाँति सर्दी एवं गर्मी स्वाभाविक है, उसी भाँति ब्रह्म शाश्वत है॥ ११७॥ अपनी आत्मचेतना में ध्यान करते रहने से कीट-भ्रमर सान्निध्य की भाँति यह जीवात्मा ब्रह्म के ध्यान से स्वयं ब्रह्म हो जाता है॥ ११८॥ यह ब्रह्म का ध्यान यथार्थ में गुरु का ध्यान ही है। शिष्य अपने चित्त में गुरु का ध्यान करने से, गुरु की निराकार ज्योति का ध्यान करते रहने से सर्वथा मुक्त एवं ब्रह्ममय हो जाता है॥ ११९॥

गुरुगीता में बताई ध्यान की विधियों में यह विधि अनूठी है। इसमें कहा गया है कि सद्गुरु का ध्यान हृदय में करो और उसे अंगुष्ठ मात्र चिन्मयज्योति के रूप में अनुभव करो। ऐसा करने से स्वयं ही ब्रह्मानुभूति हो जायेगी। ध्यान के इस उपदेश में एक विलक्षणता है और वह विलक्षणता यह है कि हृदय में भावमय भगवान के सगुण रूप का ध्यान करते हैं। निराकार यह ज्योतिर्ध्यान आज्ञाचक्र या भ्रू-मध्य में किया जाता है, परन्तु यहाँ अंगुष्ठ मात्र ज्योति पुरुष का ध्यान हृदय में करने का निर्देश है। इस निर्देश में कई संकेत निहित हैं। इन

संकेतों पर ध्यान दें तो पता चलता है कि जीवात्मा-परमात्मा एवं सद्गुरु चेतना तात्विक रूप से एक ही हैं। यदि कोई साधक हृदयस्थल में इस अंगुष्ठ मात्र ज्योति का ध्यान करता है तो स्वयं ही सद्गुरु की भगवत्ता की उपलबिध कर लेता है।

इस सम्बन्ध में एक अनुभूत कथा है। यह कथा सन्त हरिहर बाबा के एक शिष्य जगतराम की है। यह जगतराम बनारस के पास एक गाँव का अपढ़-गँवार लड़का था। अपने गाँव में गाय-भैंस आदि जानवर चराया करता था। न जाने किस प्रेरणा से बाबा के पास आ गया। उसके पास इतनी बुद्धि नहीं थी कि उसे कुछ विशेष समझाया जा सके, लेकिन फिर भी उसे भगवान की भक्ति करने की लगन थी, पर भगवान को तो वह जानता नहीं था। सो उसने अपने गुरुदेव हरिहर बाबा को ही भगवान मान लिया था। बस, उसे बाबा की एक बात समझ में न जाने कैसे आ गई थी कि इंसान जो सोचता है, एक दिन वही बन जाता है। इसलिए जो तुम चाहते हो, सो सोचा करो। बड़ी आसान और सहज बात थी, यह मन में जम गई। सरल चित्त जगतराम को तो अपने गुरु में भगवान को पाना था। उसे गुरुभक्ति में भगवद्भक्ति करनी थी।

बस, इसी लगन के साथ वह अपनी सोच में तल्लीन हो गया। उसे आसन, बन्ध, मुद्राएँ, प्राणायाम एवं ध्यान आदि क्रियाएँ तो आती न थीं। शास्त्र को न तो उसने पढ़ा था और न सुना था। कठिन-कठिन बातें उसे समझ में न आती थीं। बस, एक बात मन में थी, जो चाहिए उसे सोचो। जो सोचोगे, वैसा अपने आप मिलेगा। हरिहर बाबा के इस कथन को उसने अपने जीवन का महामंत्र मान लिया। उसे जब भी समय मिलता, गंगा किनारे बैठकर हरिहर बाबा की छवि का ध्यान करते हुए मन ही मन उनकी पूजा किया करता। मंदिर में पूजा होती उसने देखी थी, बस, वह अपने गुरु की वैसी ही पूजा करता। धूप, दीप, नैवेद्य, आरती सब कुछ मंदिर की भाँति वह मन ही मन करता,

लेकिन प्रत्यक्ष में उसके पास न तो कोई साधन होता और न सामान। अपने इस काम में उसे न तो दिन दीखता और न रात।

चिलचिलाती धूप हो या फिर कड़ाके की ठण्ड, सुबह का उजाला हो या शाम का अँधेरा या फिर घनी काली रात, उसे तो बस अपने गुरु की भावपूजा भाती थी। इस पूजा में वह अपने सारे भाव उड़ेल देता। ऐसी पूजा करते हुए कई बरस बीत गये। एक रात जब वह भावपूजा में लीन था, तो उसे ऐसा लगा जैसे कि हरिहर बाबा सचमुच ही उसके पास आ खड़े हुए हों। बस, इस आ खड़े होने में फरक यह था कि यह उनका प्रकाश शरीर था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे हरिहर बाबा के शरीर के सारे अंग प्रकाश के बने हों। बड़ी भक्ति से वह मन ही मन अपने गुरुदेव को निहारता रहा। इस प्रक्रिया में उसे कितना समय बीता याद नहीं। याद तो उसे तब आई जब उसे अनुभव हुआ कि गुरुदेव का सम्पूर्ण प्रकाश शरीर एकाएक बिखर कर उसके रोम-रोम में समा गया।

सम्पूर्ण प्रकाश न केवल उसमें लीन हुआ, बल्कि लीन होकर उसके ही अन्दर घनीभूत होने लगा। हृदय स्थल पर वह सम्पूर्ण प्रकाशज्योति के रूप में घनीभूत हो गया। यह सारा वाकया कुछ ही समय में घटित हो गया। हृदय मध्य में अंगुष्ठज्योति प्रकाशित हो उठी। और साथ ही सुनाई दी हरिहर बाबा की चिर-परिचित वाणी-'बेटा जगत! अब से तू ज्योति के बारे में सोचा कर। इसी को निहार, इसी को देख, इसी की भक्ति कर।' जो आज्ञा बाबा! कहते हुए जगतराम ने अपने कार्यक्रम में थोड़ा फेरबदल कर लिया। स्थिति वही रही, बस सोचने का केन्द्रबिन्दु बदल गया। इस अंगुष्ठज्योति को निहारने में दिन-रात बीतने लगे। सालोंसाल यही क्रिया चलती रही। जाड़ा-गरमी, धूप-छाँव पहले की ही भाँति गुजर गये। उसे होश तब आया, जब फिर से एक रात्रि को दृश्य बदला।

अब की बार उसने अनुभव किया कि उसकी वही हृदयज्योति अचानक सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में व्याप्त हो गई। सृष्टि का कण-कण उसी

से प्रकाशित है। इस प्रकाश की धाराएँ उसे न जाने कब से कब तक नहलाती रहीं। वह अनूठी भावसमाधि में बेसुध बना रहा। उसके तन, मन, प्राण, भाव, बुद्धि सब प्रकाशित हो गये। जब उसे होश आया तब उसने देखा कि उसके गुरु हरिहर बाबा खड़े हैं, जो उसे बड़े प्यार से निहार रहे हैं। उनकी आँखों में अपूर्व वात्सल्य था। इसी वात्सल्य से सने स्वरों में वे उससे बोले- 'बेटा! जो गुरु है वही आत्मा है, जो आत्मा है, वही परमात्मा है।' जो इन तीनों को एक मानता है, वही सचमुच का ज्ञानी है। उनकी यह वाणी शिष्यों की धरोहर बन गई।



सद्‌गुरु को तत्व से जान लेने का मर्म

गुरुगीता के महामन्त्रों में भक्ति रहस्य के साथ तत्त्व रहस्य भी समाया है। दृष्टि में यथार्थता आ सके तो अनुभव होता है कि भक्ति एवं तत्त्व ज्ञान दोनों आपस में गुंथे हैं। साधक के अन्त:करण में गुरुभक्ति का उदय उसमें आध्यात्मिक प्रकाश की पहली किरण की तरह होता है। गुरुभक्ति की प्रगाढ़ता के साथ साधक की अन्तर्चेतना सूक्ष्म होती जाती है। इसी के साथ उसके अनुभवों की सीमाएँ व्यापक हो जाती हैं। इनके स्तर एवं स्थिति में भी बदलाव आता है। इस प्रक्रिया के क्रमिक रूप में साधक की सत्य एवं तत्त्व की झलक मिलती है। हालांकि यह सम्पूर्ण आयोजन दीर्घकालीन है। परन्तु भक्ति से तत्त्वज्ञान के परिणाम सुनिश्चित हैं। जो शिष्य-साधक इस डगर पर संकल्पित होकर चल देते हैं- उन्हें अपने जीवन का लक्ष्य मिलना निश्चित हो जाता है।

गुरुगीता की भक्तिकथा में इस सत्य के कई आयाम प्रकट हो चुके हैं। पिछले मंत्र में ध्यान की नयी प्रक्रिया सुझायी गयी है। इसमें भगवान् सदाशिव के कथन को उजागर करते हुए बताया गया है कि हृदय में चिन्मय आत्मज्योति के अंगुष्ठ मात्र स्वरूप का ध्यान करना चाहिए। इस ध्यान की गहनता एवं प्रगाढ़ता में साधक को अगम-अगोचर ब्रह्मतत्त्व की अनुभूति होती है। जिस तरह से सुगन्धित पदार्थों में स्वाभाविक रूप से सुगन्ध व्याप्त है, उसी तरह से परमात्मा सर्वव्यापी है। अपनी आत्मचेतना में ध्यान करते रहने से कीट-भ्रमर न्याय की भाँति यह जीवात्मा आत्मतत्त्व का अनुभव करते हुए ब्रह्मतत्त्व में विलीन हो जाता है। ध्यान के इस शिखर में साधक को यह अनुभव होता है कि अपने सद्‌गुरु निराकार स्वरूप ही ब्राह्मी चेतना हैं। जो सद्‌गुरु को तत्त्व से जान लेता है, वह सही मायने में तत्त्ववेत्ता हो जाता है।

ध्यान से तत्त्वज्ञान के क्रम में मां भवानी भगवान् सदाशिव से जिज्ञासा करती हैं-

श्री पार्वत्युवाच

पिण्डं किंतु महादेव पदं कि समुदाहृतम्।
रूपातीतं च रूपं किं एतद् आख्याहि शंकर॥ १/१२०॥

श्री पार्वती कहती हैं- पिण्ड क्या है? पद किसे कहते हैं? हे शंकर रूप क्या है और रूपातीत क्या है? यह आप हमें बताएँ।

जगन्माता भवानी की ये जिज्ञासाएँ जीव को तत्त्व बोध कराने वाली है। सन्तान की सबसे अधिक चिन्ता माता को होती है। मां के सिवा अपनी सन्तान की कल्याण कामना भला और कौन करेगा? इसी कल्याण कामना से प्रेरित होकर माता ने जगदीश्वर से ये जिज्ञासाएँ कीं। इस जिज्ञासाओं की गहनता एवं व्यापकता अति विस्तार लिए हुए हैं। इन कुछ प्रश्नों में अध्यात्म का मूल मर्म है। अध्यात्मज्ञान के जो भी मौलिक सवाल हैं- वे सभी इनमें समाए हुए हैं। इनके हल होने से जीवन की सभी गुत्थियाँ स्वयं ही सुलझ जाती हैं। हालांकि इनको सही ढंग से समझने के लिए इन सभी प्रश्नों पर एक-एक करके विचार करने की जरूरत है।

इनमें से सबसे पहला सवाल है पिण्ड क्या है? सामान्यतया यह सभी जानते हैं कि पिण्ड देह को कहते हैं। देह की अनुभूति सभी को होती है। विशेषज्ञ इसकी रचना, क्रिया, विकृतियों एवं इसके समाधान को जानते हैं। चिकित्सा विशेषज्ञ वर्षों तक लगातार इसे पढ़ते हैं- इसके बारे में अनुसन्धान करते हैं। हालांकि इस अथक परिश्रम के बावजूद के कबूल करते हैं कि उनके शोध प्रयास अभी अधूरे हैं। इस देह ज्ञान से अलग पिण्ड का तत्त्वज्ञान अलग है। पिण्ड चिकित्सा विज्ञान का शब्द न होकर योग विज्ञान का शब्द है। इसे योग की दृष्टि से ही सोचा और जाना जाना चाहिए।

जीव को पिण्ड मिलने और इसमें अबद्ध होने का कारण उसकी वासनाएँ, चाहतें और इच्छाएँ हैं। वासनाएँ जब तक जीव का पिण्ड से छुटकारा नहीं है। इतना ही नहीं वह इन वासनाओं से लिपटे रहने के

कारण स्वयं को ही पिण्ड समझाने लगता है। ग्रामीण अंचल में एक बड़ा प्रचलित मुहावरा है- पिण्ड छुड़ाना। किसी जंजाल या विपत्ति से पीछा छूटने पर कहते हैं कि चलो पिण्ड छूटा। भले ही इस कहावत पर किसी ने गहराई से विचार न किया हो, परन्तु सच यही है कि पिण्ड छूटना बड़े महत्त्व की बात है। परन्तु योगीजन जानते हैं कि पिण्ड से मुक्त होना वासनाओं से मुक्त होने के बाद ही सम्भव है। और वासनाएँ कुण्डलिनी शक्ति के जागरण व ऊर्ध्वगमन के बाद ही छूट पाती है। सो वासनाओं और इससे पैदा होने वाले कर्म बीजों व इसके परिणामों को जिसने जान लिया, समझो उसने पिण्ड के तत्त्व को जान लिया।

माता जगदम्बा प्रभु से अगला सवाल करती हैं- प्रभु पद किसे कहते हैं ? यह पद शब्द भी यौगिक शब्दावली की एक गहरी विशेषता है। योग में जीवात्मा को पद कहा गया है। इसका एक नाम हंस भी है। इस हंस का ज्ञान सामान्य जनों को नहीं होता। क्योंकि वासनाओं से चंचल प्राणों में यह अनुभूति नहीं हो पाती। जब वासनाओं का वेग थमता है तब प्राण स्थिर होते हैं। और प्राणों की इस स्थिरता में हंस का अनुभव होता है। यह अनुभव जीवात्मा का है। जीवात्मा का मतलब है आत्मचेतना का वह स्वरूप जिसने प्रकृति बन्धनों के कारण जीव भाव को स्वीकार कर लिया है। जीव भाव से मुक्त होने पर ही योग साधना में आत्मतत्त्व की अनुभूति होती है।

इसी क्रम में मां की अगली जिज्ञासा है कि प्रभु रूप क्या है ? रूप का मतलब है आत्म रूप का। यह आत्मरूप है आत्मज्योति रूप नीलबिन्दु। इसका अनुभव साधक को आत्मज्योति का अनुभव देता है। इस अनुभूति के साथ ही साधक को अपने आत्मरूप का ज्ञान व भान हो जाता है। सभी जप, योग एवं तप का सुफल यही है। जिसकी यह स्थिति नहीं है समझो उसे अभी अध्यात्म की कक्षा में प्रवेश नहीं मिला। योग साधना में रूप दर्शन एवं रूप मुक्ति यही दो क्रम है। इन्हें

पूरा कर लने पर रूपातीत अनुभूति का क्रम होता है। यह अध्यात्म विद्या की उच्च कक्षा है। इसमें प्रवेश साधक को जन्मों की साधना के बाद मिलता है।

इस उच्च कक्षा के बारे में जगन्माता भवानी अगली जिज्ञासा करती हैं- प्रभु रूपातीत क्या है ? रूपातीत है ब्राह्मीचेतना। सभी रूप इसी से उदय होते हैं और इसी में विलीन हो जाते हैं। यह अनुभूति विरल है। जन्म-जन्मान्तर की साधना के बाद ही साधक इसकी प्राप्ति का अधिकारी हो पाता है। इसे पाने पर न शोक रह जाता है और न मोह। माया से परे अगम-अगोचर प्रभु की अनुभूति अति असाधारण अनुभव है। इस अनुभव में साधना की सार्थकता है। यहीं जीव शिव बनता है। इस शिवत्व की प्राप्ति में उसकी गुरुसेवा की सफलता है। उसके सद्गुरु के वरदान का सुफल है। जिसको यह मिल गया समझो उसे सब मिल गया।

हालांकि यह तत्त्व बोध होता है क्रमवार ही। सबसे पहले पिण्ड बोध करना होता है। किन वासनाओं के प्रतिफल से यह देह मिली है। किन कर्मबीजों के कारण वर्तमान परिस्थितियाँ है। इसे अपनी साधना की गहराई में अनुभव करना होता है। इसके बाद आता है प्राणों की गति का क्रम। प्राणों की गति का ऊर्ध्व व स्थिर होना जीवात्मा के साक्षात्कार का कारण बनता है। इसके बाद ही हो पाता है आत्मज्योति के दर्शन का क्रम। और बाद में ब्राह्मी चेतना से सायुज्य की स्थिति बनती है। यह सायुज्यता मिलने पर साधक को अपने सद्गुरु के निराकार निरञ्जन तत्त्व का साक्षात्कार होता है। मां की इन जिज्ञासाओं में भगवान् सदाशिव के उत्तर अत्यनत मर्मस्पर्शी हैं।



युगान्तर चेतना प्रेस शान्तिकुंज, हरिद्वार (उत्तराञ्चल)२४९४११

गुरुगीता भगवान् शंकर द्वारा माता पार्वती जी को सद्गुरु की महिमा के संदर्भ में कही गई है। भगवान श्री वेदव्यास ने स्कन्द पुराण के 'उत्तर खण्ड' में इस प्रसंग को वर्णित किया है। कैलाश शिखर पर देवाधिदेव महादेव एवं शक्तिरूपा माँ के बीच के इस वार्तालाप को बाद में नैमिषारण्य के पावन तीर्थ में सूत जी ने ऋषिगणों को सुनाया। वही ज्ञान, परम पूज्य गुरुदेव के जीवन की व्याख्या, उनके द्वारा दिये गये मार्मिक सूत्रों एवं उनके प्रति समर्पण भाव से अभिव्यक्त किये गये दृष्टान्तों के माध्यम से 'गुरुगीता' में सभी सुधी पाठकों के लिए प्रस्तुत है। गुरु-तत्व का बोध जितना शिष्य को होता है, श्रद्धा जिस अनुपात में बढ़ती है, सुसंस्कारों की स्थापना भी उसी त्वरा से होने लगती है। प्रज्ञा अवतार रूपी गुरुसत्ता को समर्पित है महाकाल की वाणी- उन्हीं के जीवन की व्याख्या रूप में, सभी शिष्यों के कल्याणार्थ।



विचार क्रान्ति अभियान, शान्तिकुञ्ज, हरिद्वार

Code No. SJ 30